ओ३म

आत्म लोक

ईश्वर की सृष्टि के अद्भुत व्याख्याता पूज्यपाद गुरुदेव श्रृंगी मुनि कृष्णदत जी महाराज द्वारा विशेष योग समाधि मे,देवयान की आत्माओ को सम्बोधित प्रवचनो का संकलन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्ण दत्त जी महाराज

प्रकाशक :

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)

अन्तरजाल सम्पादक : श्री सुकेश त्यागी – अवैतनिक

अन्तरजाल विशेष सहयोग : डा0सतीश शर्मा (अमेरिका) – अवैतनिक

अन्तरजाल पुस्तक संस्करण : प्रथम प्रेषण

सृष्टि सम्वत् : 1,96,08,53,111

विक्रम सम्वत् : अश्विन शुक्ल चतुर्थी,2067

गुरुदेव का जीवन

14 सितम्बर 1942,उतर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के ,ग्राम खुर्रमपुर सलेमाबाद मे एक बालक का जन्म हुआ ।

बालक जन्म से ही एक विलक्षण से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी वह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा मे, कुछ अन्तराल लेटजाता या लिटा दिया जाता तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती , कुछ मन्त्रोच्चारण और उसके बाद पुरातन संस्कृति पर आधारित 45 मिनट के लगभग एक दिव्य प्रवचन होता । बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ मे आवाज अस्पष्ट होती और जैसे आयु बढने लगी वेसे ही आवाज और विषय दानो स्पष्ट होने लगे । पर एक अपठित बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा , इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विशय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था । प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा , इस बालक की एंसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था ।

इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनो से ही हुआ । कि यह सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालो मे श्रृंगी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल मे आदि ब्रह्म के शाप के कारण इस युग मे जन्म का कारण बनी । गुरुदेव इस जन्म मे भले ही अपठित रहे,लेकिन शवासन की मुद्रा मे आते ही इनका पूर्वजन्मित ज्ञान,उदबुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष–स्थ आत्माओ का दिव्य उद्बोधन ,प्रवचन करते और शरीर की स्थिति यहॉ होने के कारण हम सबको भी इनकी दिव्य वाणी सुनाई देती । इन पंवचनो मे ईश्वरीय की सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है , ब्रह्माण्ड की विशालता , सृष्टि का उद्देश्य,विभिन्न कालो का आंखो देखा वर्णन भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का दर्शन क्या कुछ दिव्य न हीं है इन प्रवचनो मे ये किसी भी मनुष्य का,समाज का और राष्ट्र का मार्ग दर्शन करने का सामर्थ्य रखते है ।

20 वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्य और मार्गदर्शन करते रहे ।

दिल्ली के कुछ प्रबुद्ध महानुभवो ने प्रवचनो की इस निधि को शब्द ध्वनि लेखन उपकरण के द्वारा संग्रहित करके ,पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसके लिए वैदिक अनुसन्धान समिति नामक संस्था का गठन किया । जिसके अर्न्तगत सन् 1962 से प्रवचनो को संग्रहति और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इस दिव्यात्मा ने पूर्व निर्धारित 50 वर्ष के जीवन को भोगकर सन् 1992 मे महाप्रयाण किया ।

इस अन्तराल इनके 1500 प्रवचन, शब्द ध्वनि लेखित यन्त्र के द्वारा ग्रहण किये गये । जिनको धीरे–धीरे प्रकाशित किया जा रहा है।वैदिक जीवन और वैदिक संस्कृति का जो स्वरूप इनमे समाया हुआ है । उसके सम्वर्धन , संरक्षण और प्रसारण के लिए हर वैदिक धर्मी के सहयोग की अपेक्षा है । जिससे वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति से निहित यह महान ज्ञान जनमानस मे प्रसारित हो सके।

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)

१. प्रथम अध्याय–आत्म–लोक एवं इन्द्रियों की साधना 02–07–1978

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्पराओं से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद–वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की पतिभा का वर्णन किया जाता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है अथवा उसी की प्रतिभा इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड में ओत–प्रोत रहती है। जितना भी यह जड़ जगत अथवा चतैन्य जगत हमे दृष्टिपात आता है जितना भी यह चेतनामय दृष्टिपात आ रहा है, इस सर्वत्र चेतना का जो मूल है अथवा गति देने वाला है, वह परमापिता परमात्मा ही माना जाता है क्योंकि वह विज्ञानमय है। वह ज्ञान की तरंगों में तरंगित हो रहा है। प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है अथवा उसका वर्णन कर रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, उसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है।

आओ! मेरे पुत्रों! आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कुछ वार्ताएं अथवा कुछ प्रेरणा दे रहा था। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र मानव को कोई न कोई प्रेरणा देता है। मुझे नाना ऋषियों की वार्ताएँ स्मरण आती रहती हैं और उनमे ऋषियों के द्वारा जो वेदमन्त्र की प्रतिभा अथवा वह जो परमात्मा का वर्णन करता है, उसकी आभा उसमें निहित रहती है और वह जो आभा है, वही मानव को मानवता तथा मननशीलता और महत्ता प्रदान करती रहती है। वही प्रेरणा तो मानव को निर्मल स्वच्छ बनाती रहती है। क्योंकि हमारे यहाँ चिन्तन करने का एक मार्ग है। प्रत्येक मानव चिन्तन करने के लिए आया है और चिन्तन मानव को करना ही चाहिए। चिन्तन क्या है? यह आत्म–प्रेरणा है, अथवा ज्योति है जिस ज्योति को धारण करने के पश्चात मानव ज्योतिर्मय बन जाता है और अपने अन्तरात्मा में, अन्तर्हृदय में जो ज्योति जागरूक हो रही है, उस ज्योति को अपने में धारण करता हुआ, प्रेरणा में रमण करता हुआ, सर्वत्र ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करने लगता है। आज मैं तुम्हें कोई विशेष चर्चाएँ तो इस सम्बन्ध में देने नहीं आया हूँ, परन्तु हमारा जो विचार विनिमय है, हमारा जो चिन्तन करने का कोई विषय है वह विषय है ''आत्मलोक'' क्योंकि हमारे यहाँ वशिष्ठ पुरूषों ने चार प्रकार के लोकों की विवेचना की है। सबसे प्रथम आत्मलोक कहलाता है; द्वितीय पितर लोक कहलाता है; तृतीय गन्धर्व लोक कहलाता है और चतुर्थ में ब्रह्म लोक का वर्णन आता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें आत्म लोक में ले जाना चाहता हूं।

मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय बेटा! नाना ऋषि विद्यमान हुये। जिन ऋषियों में महर्षि प्रवाहण, महर्षि तिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि पुलस्त्य, महर्षि रेवक मुनि महाराज और महर्षि शाण्डिल्य, महर्षि मुद्गल, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि सोमकेतु ये नाना ऋषि अपने–अपने में पूर्णत्व को प्राप्त रहते थे। मुझे स्मरण है पुत्रों! एक समय ये सब जिज्ञासु अपने आसन में गति करने लगे और भ्रमण करते हुये महर्षि जमदग्नि के आश्रम में पहुंचे। महर्षि जमदग्नि ने कहा, ''कहो ऋषियों! तुम्हारा इस प्रकार आगमन क्यों? क्योंकि ब्रह्मवेत्ताओं का जो आगमन होता है, वह कोई न कोई कारण लिये होता है।'' उन ऋषियों ने एक ही स्वर में कहा, 'हे ऋषिवर! आज हम कुछ वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे और उन वेदमन्त्रों में हमारे यहाँ आत्म लोक का वर्णन आ रहा था, आत्मा की आभा का वर्णन आ रहा था। तो हम सर्वत्र जिज्ञासुओं ने यह विचारा कि महर्षि जमदग्नि के आश्रम को गमन करना चाहिए। क्योंकि वह पूर्णरूपेण है और वह आत्मा का चिन्तन करने वाले हैं, आत्मलोक को जानते हैं। तो इसलिए प्रभु! आपके आश्रम में आये हैं, हमारा जो निर्णय कृति वृत्त, वेत्ता है, हमारे जो मनों में शंकाएं हैं, आत्म–लोक का जो विवरण है। हमने आत्म–लोक को केवल अङ्कुर रूपों में धारण कर लिया है। परन्तु यह वृक्ष कैसे बनता है? यह हम नहीं जान पाते। यह हमें निर्णय कराइये।''

महर्षि जमदग्नि ने इस वाक्य को स्वीकार किया और उन्होंने कहा, ''भाई! इसके ऊपर मेरा भी प्रायः अध्ययन चल रहा है। चलो, हम भी यहाँ से गमन करते हैं, हम भी इस विषय के जिज्ञासु हैं परन्तु जिज्ञासा ले करके हम यहाँ से गमन करते हैं और भ्रमण करते हुये महर्षि सोमकेतु, जो भारद्वाज कहलाते हैं, वह इसका निवारण करेंगे।''

वहाँ से सर्व जिज्ञासुओं का समूह भ्रमण करता हुआ उस आश्रम में पहुँचा जहाँ ऋषिवर ब्रह्म की उड़ान उड़ रहे थे। वह चिन्तन और मनन कर रहे थे। वह सोमकेतु भारद्वाज मुनि के द्वार पर पहुंचे। सोमकेतु भारद्वाज मुन महान ने अपने आसन को त्याग दिया और कहा, ''आओ ब्रह्मवेत्ताओं! विराजो'' वे ब्रह्मवेत्ता जब विद्यमान हो गये तो सोमकेतु मुनि महाराज बोले कि महाराज! यह मेरा कैसा सौभाग्य है, आज मेरे यहाँ ब्रह्मवेत्ताओं का समूह मेरे द्वार पर आ पहुंचा है, बिना सूचना के। आगमन की कोई पूर्व सूचना नहीं। मुझे कोई प्रतीत नहीं था कि ब्रह्मवेत्ताओं का आसन तेरे यहाँ, तेरे आसन पर आ पहुंचेगा। यह मेरा कैसा सौभाग्य है, मैं कितना सौभाग्यशाली हूं। जिस आसन पर ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्म का चिन्तन करने वाले पुरूष रहते हों। अथवा पुरूषों का आगमन होता हो, वह कितना सौभाग्शाली है। जब यह वाक्य उन्होंने श्रवण किया तो ऋषि बोले, ''नहीं, कोई वाक्य नही। ऋषिवर! आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं, आपने तो सोम का पान किया है, हम सोम की जिज्ञासा में हैं। हम जिज्ञासु हैं, आपने उस वस्तु को प्राप्त कर लिया है।'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! आपका आगमन क्यों? बिना कारण के आपका आगमन नहीं हो सकता। इसके कारण को मैं जानना चाहता हूँ। सब ऋषियों ने एक ही स्वर में कहा, ''हे ऋषिवर! आज हम कुछ वेदों का अध्ययन कर रहे थे और जब हम अध्ययन कर रहे थे तो उसमें आत्मलाकों की चर्चा आ रही थी। हम आत्मलोक को जानना चाहते हैं, यह आत्म लोक क्या है?

सोमकेतु भारद्वाज मुनि ने कहा, ''तुम आत्मा के सम्बन्ध में कितना जानते हो?'' जब उन्होंने कहा तो बेटा! ऋषियों ने कहा कि ''महाराज! अब तक हमने यही जाना है कि ''आत्म तत्व'' हमारे शरीर में वास करता है। परन्तु हम यह नहीं जानते कि आत्म लाके क्या है? हम आत्म लोक को जानना चाहते हैं।'' सोमकेतु भारद्वाज मुनि बोले कि ''यह तो तुम जानते हो कि लोक उसे कहते हैं जहाँ जिसका वास हो। लोक का अभिप्राय इतना ही है। आत्म लोक

का अभिप्राय है कि आत्मा एक लोक में रहता है और वह आत्मा का लोक क्या है? आत्मा का लोक यह शरीर कहलाता है, इस शरीर में आत्मा का वास करता है तो यह शरीर आत्मा का लोक कहलाता है।

अब तुम यह जानना चाहोगे कि ''आत्म–लोकाम् बृहिः वृत्तम् देवयत्ताम् लोकाः।'' यह आत्मा का एक लोक है, जो इस शरीर में वास करने वाला है। शरीर एक लोक कहलाता है। विचार यह आता है कि जैसे मानव दर्पण में अपने को दृष्टिपात करता है इसी प्रकार दर्पण की भाँति इस मानव शरीर में यह आत्मा वास करता है। इसलिए हमारे आचार्यों ने सबसे प्रथम आत्मा को जानने के लिए कहा है। यह कहा है कि हे मानव! यदि तू अग्रणीय बनना चाहता है तो अपने को जानना ही तेरा कर्त्तव्य है क्योंकि तेरा अन्तरात्मा में, तेरे अन्तर्हृदय–रूपी गुफा में यह आत्मा, आत्म चेतना वास करती है और आत्म–चेतना, जिसके कारण यह मानव शरीर चेतनित बना रहता है, आत्मा का यह लोक है। इस आत्मा को जानना तेरा कर्त्तव्य है।''

आदि ऋषियों ने विराजमान हो करके सबसे प्रथम कहा कि मानव को तीन आचमन करने चाहिए। तीन आचमन क्यों करता है प्राणी? आचमन इसलिए करता है कि 'त्रिविद्या' की वह महान महत्ता में रमण करने वाला बने और त्रिविद्या को पान करने वाला जो होता है वह ''ब्रह्मणाः वृत्तम देवाः'', वह ''ब्रह्म वस्तुतिः वृत्तः देवा अभ्यम् गति नानश्चतः।'' वेद का आचार्य कहता है कि वह जब आचमन करता है तो वह ''त्रिविद्या'' का पान करता है और त्रिविधा क्या है? जैसे शीतल जल मानव के कण्ठ में शान्ति स्थापित करता है, मानव का कण्ठ शान्त हो जाता है। इसी प्रकार यह जो त्रिविद्या है इसको हम ज्ञान, कर्म और उपासना कहते हैं। ज्ञान, कर्म और उपासना ही तीन आचमन कहलाये जाते हैं। सबसे प्रथम वह ज्ञान में जाता है।

ज्ञान का जब आचमन करता है तो यह विचारता है कि मैं ज्ञान के क्षेत्र में हूँ। उसके पश्चात वह कर्म में चला जाता है। कर्म की मीमासा करने वाला मीमांसाकार कहता है कि जितना भी मानव के हृदय में नृत्य होता है वह सर्वत्र एक कर्म कहलाता है। ज्ञान,कर्म और उपासना कहते हैं, प्रभु की महिमा को जानना। प्रभु की जो महिमा है अपने को जब प्रभु को समर्पित करके और प्रभु की जितनी भी महिमा है, जितना भी यह तरंगवाद है, इसमें जब वह गति करने लगता है तो जानो वह उपासना कर रहा है। उपासना का अभिप्राय क्या है? उपासना कहते हैं ऊपर उपासना उपविद्या का धारण करना।

परा और अपरा दो प्रकार की विद्या कहलाती है, दो प्रकार का ज्ञान कहलाता है। एक परा है, एक अपरा है। जो परा विद्या है, जिस परा विद्या में जाने के पश्चात मानव को प्रकाश ही प्रकाश प्राप्त होता है, वह प्रकाश में रमण करना चाहता है। वह परा विद्या कहलाती है। जिसे हम परा कहते हैं। एक अपरा है। अपरा संसार का ज्ञान है। तो आओ मेरे प्यारे! उपासना का अभिप्राय क्या कि हम उपासक बने। उपासक हम किसके बने। हम प्रभु ही प्रतिभा अथवा उसका जितना भी ऊपरी विवरण है उसको हम अच्छी प्रकार जानते रहें। उस आभा में रमण करते रहें। प्रभु का मनन करते हुये उसकी आभा को जानना ही उपासना कहलाती है।

सबसे प्रथम जब आत्म लोक में प्रवेश करता है, आत्म लोक में जब जाता है तो वह तीन आचमन करता है। आचमन का अभिप्राय त्रिविद्या को धारण करने वालों में नाना ब्रह्मवेत्ता हुये हैं। परन्तु आज का विचार क्या? मुनिवरो! देखो तीन आचमन करता है। आचमन करने के पश्चात सर्वत्र जो इन्द्रियां हैं मानव के शरीर में, इन इन्द्रियों के ऊपर वह अपना आधिपत्य करता है।

वह कहता है ''प्राणम् बृहिः रत्त्यम् देवाः।'' वाक्–शक्ति मेरी पवित्र हो। वाक् शक्ति में जाता है। वाक्–वाक् कहता है क्योंकि यह जो वाक्–शक्ति है यह वाणी से शब्द उच्चारण कर रहा है उस शब्द की जो गति है वह कितनी विशाल है कितनी महान है। तो प्रभु से आत्म लोक में जाने से पूर्व यह विचारता है कि मेरी वाक् शक्ति इतनी विचित्र हो। मेरा वाक्य, मेरा शब्द इतना महान हो कि उस शब्द के द्वारा मैं नाना लोकों में गति करने वाला बनूं। यह पृथ्वी की जो परिक्रमा होती है, यह शब्द पृथ्वी की परिक्रमा करता है। वेद का ऋषि तो यहाँ तक कहता है, आचार्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि हमारे यहाँ जो वाक् शक्ति है, वाक् शक्ति जो मानव उच्चारण करता है, उसकी रचना होती है। रचना हो करके वह शब्द पृथ्वी की गति करना आरम्भ करता है। आचार्यों ने कहा कि जो शब्द उच्चारण होता है वह एक क्षण समय में इस पृथ्वी की 117 परिक्रमा कर जाता है। इसलिए आचार्यों ने कहा कि वाक् शक्ति मेरी विचित्र होनी चाहिये। यह वाक् उत्तरायण में जाता है, उत्तरायण से यह दक्षिणायन को गति करता है। वाक्य की रचना कहाँ से होती है? आचार्यों ने कहा कि मानव कण्ठ में जब यह शब्द आता है अथवा तरंगें आती है तो इन तरङ्गों को 'प्रति अबृहा' कण्ठ में आता है। जब यह प्रवाह आता है तो कण्ठ में आते ही वाक्य शक्ति की रचना हो जाती है। वही वाक्य ब्राह्म जगत् में प्रवेश करता है, ब्राह्म जगत में चला जाता है। यह पृथ्वी की एक क्षण समय में परिक्रमा करता है।

परिणाम क्या? मुनिवरो! देखो, यह जो वाक्य है यह दो प्रकार का कहलाया जाता है। वास्तव में एक वाक्य जो बाह्य ऊपरी रूपों में परिणत रहता है। एक आन्तरिक जगत् से आता है जो अन्तर्हृदय रूपी गुफा से आता है वह आर्शीवाद बन करके रहता है और जो कण्ठ से रचना होती है वह रचना शब्द की एक लौकिक रचना है, एक पारलौकिक रचना है। जो लौकिक रचना है वह लोक में शब्द गति करता है। तो पारलौकिक रचना है, जो अन्तर्हृदयरूपी गुफा से तरंगें चलती है, कण्ठ में आ करके वह शब्द बनता है। शब्द के साथ में आकार बनता है और आकार बन करके पृथ्वी की परिक्रमा कर देता है, वह उत्तरायण से दक्षिणायन को गति करता है। दक्षिणायन से ऊर्ध्वा में गति करने वाला वह शब्द कहलाता है वह हृदय रूपी गुफा से एक शब्द चलता है।

विचार विनिमय यह करना है, हमें मनन करना है कि हम आत्म लोक में प्रवेश करना चाहते हैं। तो आत्म लोक में जाने से पूर्व हमें शब्द को विचारना होगा। इसलिए मुनिवरो! देखो, जो साधक पुरूष होते हैं, वह सबसे प्रथम वाक्–वाक् कहते हैं और वाक्–वाक् कहते हैं तो उस समय उच्चारण करते हैं, वाक् वाक् और वे क्यों कहते हैं? क्योंकि वाक् शक्ति मेरी पवित्र होनी चाहिये। हे परमात्मा! हे देव! मेरी वाक्–शक्ति में इतना नृत्य होना चाहिये, इतना अहिंसा परमो धर्मः होना चाहिये कि मेरे वाक्य की शक्ति से जितने भी हिंसक प्राणी हैं जितने भी प्राणी मात्र हैं, मेरी वाणी मात्र से वे तृप्त होने वाले बनें। वाक् शक्ति विशाल शक्ति है जिससे मृगराज, सिंहराज ऋषियों के चरणों में ओत–प्रोत रहते रहे हैं।

बेटा! मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है। त्रेता के काल में एक समय भंयकर वन में जब महाराज दिलीप नन्दिनी की सेवा कर रहे थे। उन्हें पुत्रेष्टि यज्ञ करना था और जब नन्दिनी की सेवा करते हुये भंयकर वन में पहुंचे तो भंयकर वन में झरने से जल नृत्य कर रहा था। महाराजा दिलीप उसे दृष्टिपात करने लगे। इतने में ही मृगराज ने, सिंह राज ने आ करके नन्दिनी पर आक्रमण किया तो महाराजा दिलीप दृष्टिपात करने लगे और महाराजा दिलीप ने कहा, ''यह क्या कर रहे हो मृगराज?'' उन्होंने कहा, ''महाराज यह मेरा भोज्य है, नन्दिनी मेरा भोज्य है, मैं इसे पान करूँगा।'' उन्होंने कहा कि नन्दिनी तो तुम्हारा भोज्य है, परन्तु मेरा कर्तव्य है, मैं इसकी रक्षा करने वाला हूं, एक राजा हूं। एक राजा होने के नाते मैं इसकी रक्षा करूँगा, रक्षार्थ आया हूँ।

महाराज दिलीप की वाणी बड़ी पवित्र और सुसज्जित थी। उनकी वाणी में एक तप था, एक महत्ता थी। मृगराज! सिंहराज ने नन्दिनी को त्याग करके वह एक स्थली पर विद्यमान हो गया। उन्होंने कहा, ''हे मृगराज! तुम्हें यह प्रतीत है कि नन्दिनी मेरी पूज्य है, और नन्दिनी से पूर्व मेरे प्राणों का हनन होना तो उत्तम कार्य है। नन्दिनी को उसके पश्चात कोई भी उसे अपना भोज्य बना सकता है।'' जब उन्होंने ऐसा कहा तो देखो, आत्मा सभी में विद्यमान है, आत्मा का जो नृत्य है वह जो सर्वत्र प्राणियों में होता रहता है। महाराज दिलीप की ये चर्चायें, जब मृगराज ने श्रवण की तो सिंहराज कहते हैं, ''हे राजन्! धन्य है। हम तेरे राष्ट्र में गमन करते हैं। तेरे राष्ट्र में किसी प्राणि का भी हनन नही होगा। यह मेरा सौभाग्य है जो आप जैसे अधिराज रक्षक हैं। एक गऊ की ही रक्षा नहीं, एक नन्दिनी की ही रक्षा नहीं, प्राणीमात्र की जिस राजा के राष्ट्र में रक्षा होती हो, वह राष्ट्र तो पवित्र कहलाता है, राजन्! हे राजन् आपकी वाणी में इतनी महत्ता है, इतना तप भरा हुआ है कि हमारी अन्तरात्मा विदीर्ण हो गयी है। आपकी वाणी के तप के कारण हमारा हृदय शान्त हो गया है। यह नन्दिनी हमारा भोज्य नहीं रहेगी।''

विचार विनिमय क्या? तो यह मानव की वाक् शक्ति है। महाराजा दिलीप नन्दिनी की सेवा कर रहे थे। कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे और अपने ऋषियों के वाक्यों को स्वीकार कर रहे थे। उसका परिणाम क्या हुआ कि वाक् शक्ति इतनी विचित्र होती है। वाक् शक्ति के कारण यह जो सिंहराज है, हिंसक प्राणी हैं अपनी आभा को त्याग देते हैं। वे भी ''अहिंसा परमो धर्मः'' की घोषणा करने लगते हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है वह समय जब चाक्राणि गार्गी समागान गाती थी। एक समय चाक्राणि गार्गी और मैत्रेयी दोनों एक स्थली पर विद्यमान हो करके समागान गाने लगी। जब समागान गाने लगीं तो भयंकर वन है, शून्य गति है को प्राप्त होने वाला। देखो, ''शम्–शम् ब्रहीः'' वह भयंकर वन है। जब वे दोनों एक स्वर में गान गाने लीं तो सिंहराज, सर्पराज और भी नाना प्राणी शब्दो की ध्वनि को श्रवण करने के लिए ''ऋषि अब्राहम'' विदुषियों के द्वार पर आ गये, उन शब्दों की श्रवण करने के लिए। वे शब्द इतने तपे हुये, इतने महान् कहलाते हैं कि वे जो ''शब्दम् बृहिः वृताः है, वह जो शब्द है वह हिंसक प्राणियों को विदीर्ण कर रहा था। हिंसक प्राणियों को भी ''अहिंसा परमोधर्मः'' की घोषणा कर रहा था।

विचार विनियम क्या? इसलिए वेद का ऋषि कहता है, जब वह साधना के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो वह यह कहता है कि वाक्–वाक्! मेरी वाक् शक्ति कैसी हो कि मेरे वाक्य को श्रवण करने के लिए, सर्पराज जितने भी हिंसक प्राणी हैं, ''अहिंसा परमोधर्मः'' की घोषणा करने लगे।

आओ, मेरे पुत्रों! विशेषता क्या? उच्चारण कर रहा हूं कि वेद का ''वाक्यम् ब्रही'' वेद का ऋषि कहता है कि मेरी वाक् शक्ति पवित्र हो और कैसी वाक् शक्ति हो? मेरी वाक् शक्ति से प्रत्येक प्राणीमात्र वन्दना करने लगे, मन्त्रणा करने लगे जिससे उनके अन्तरात्मा में, जो हृदय में विराजमान होने वाली आत्मा को जो लोक है, उस लोक में विराजमान होने वाली पवित्र आत्मा है उस आत्म तत्व की आभा में रमण करता रहे।

हमारे यहाँ ऐसे–ऐसे ब्रह्मवेता, ऋषि हुये हैं, ऐसी महान मेरी पुत्रियां, मेरी माताएं विदुषी हुई हैं जिनके चरणों में सर्पराज ओत–प्रोत हो करके उनकी गाथा गाते रहे हैं। तो विचार–विनिमय क्या? कि साधक सबसे प्रथम कहता है कि मैं आत्म लो में जाने से पूर्व शब्द के मार्ग को जानना चाहता हूं। मैं शब्द की शक्ति को जानना चाहता हूं, जो यह कहता है प्रथम ही वाक्–वाक् कहता है और वाक्–वाक् कह करके यही उच्चारण कर रहा है कि मेरी वाक्–शक्ति पवित्र हो।

द्वितीय वाक्य इसके पश्चात कहता है। ''वाक् प्राणम् प्रहवे वृत्तदेवाः''। मेरा जहाँ वाक्य पवित्र हो वहाँ मेरी घ्राण पवित्र होनी चाहिये। प्राण पवित्र हों। मेरे प्यारे! इस मानव शरीर में प्राण गति करते हैं। ''वाक्यम्'' वाक् के पश्चात ये घ्राण के क्षेत्र में जाता है। घ्राण की शक्ति में प्राणः प्राणः करके वह घ्राण को ऊंचा बनाता है। वह कहता है, हे प्रभु! मैं तेरे राष्ट्र में आया हूं। मैं तेरे इस महान जगत को जानना चाहता हूं।

जहाँ वह वाक् शक्ति में जाता है, वहाँ वह प्राण के क्षेत्र में जाता है। तो कहता है कि प्राणः प्राणः। मेरे प्यारे! घ्राण जो इन्द्रियां हैं, ये मन्द सुगन्ध को ग्रहण करने वाली हैं। परमाणु आते हैं, गति करते हैं, परमाणु एक नहीं, अरबों–खरबों परमाणु आते हैं। गति करते हैं, ब्राह्य जगत में जाते हैं और बाह्य से आन्तरिक जगत में प्रवेश करते हैं। आन्तरिक से बाह्य जगत में चले जाते हैं। यह परमाणुओं का क्षेत्र है। नाभि केन्द्र से ले करके ब्रह्मरन्ध के आसन से गति करता हुआ घ्राण के द्वारा यह प्राण गति करता है। ये प्राणेन्द्रियां, ये प्राण की अशुद्ध शक्ति है। इसमें प्राण गति करता है अथवा नृत्य करता रहता है। मानव की जो घ्राणेन्द्रियां हैं, इन्हीं के द्वारा यह मन्द सुगन्ध को जानता है, दुर्गन्धि को जानता है। सुगन्ध को जान करके, परमाणुवाद को जान करके, यह पृथ्वी के खनिज को जानने लगता है। वायु मंडल में, वायु में जो गति कर रही है, वायु में जो तरंगे गति कर रही हैं, परमाणु गति कर रहे हैं उन परमाणुओं को घ्राण के द्वारा ही वह जान लेता है कि यह परमाणु गति कर रहा है। इस प्रकार का परमाणु इसमें नृत्य कर रहा है। अथवा गति कर रहा है। वे जो गतियां हो रही हैं, उसी परमाणु को जान करके मानव भौतिकवाद में प्रवेश कर जाता है।

आध्यात्मिकवाद में जाने से पूर्व आत्मलोक में, घ्राण के लोक में, चला जाता है, वह प्राण के क्षेत्र में चला जाता है। मुझे स्मरण आता है बेटा! एक समय महर्षि भृंगी ऋषि जो उद्दालक गोत्र में थे। भंयकर वनों में तप कर रहे थे और तप क्या कर रहे थे कि घ्राण इन्द्रिय को जानने के लिए तत्पर थे। जब वह घ्राण इन्द्रियों को जानने के लिए तत्पर थे तो घ्राणेन्द्रियों से तरंगे गति कर रही थी, उन तरंगों को वह जान रहे थे और जिस स्थली पर विद्यमान थे, उनमें जो पृथ्वी में गन्ध आ रही थी, सुगन्ध आ रही थी, सुगन्ध आ रही थी, उस मन्द सुगन्ध को वह धारण कर रहे थे। उन परमाणुओं को, उन गतियों को जान रहे थे, उन तरंगों को वह गणित कर रहे थे। जब वह गणना में गणित कर रहे थे तो मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय उनके द्वार पर तृतकेतु महाराज आये। तृतकेतु ऋषि ने कहा कि महाराज् यह क्या कर रहो हो? भृंगी ऋषि बोले कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूं कि यह जो हमारी घ्राण इन्द्रियां हैं, इसमें जो विज्ञान प्रभु ने दिया है, उसको मैं जानना चाहता हूं। ऋषि तरंगों की गतियों की आभा में रमण कर रहे थे। वेद के ऋषि, भृंगी ने यहाँ तक घ्राणेन्द्रियों को जाना। उस गति से क्या–क्या जान सकता है? इस प्राण को जानने के पश्चात वह पृथ्वी के गर्भ में जो नाना प्रकार की तरंगों में तरंगित अक्षत गति हो रही है जो गतियां हो रही हैं। वे जो गतियां हो रही हैं। वे जो गतियां हैं–वे रजोगुणी हैं, सतोगुणी हैं, उनको जानने के लिए, यह मानव का अन्तहृदय जान लेता है कितनी दूरी पर कौन सा खनिज है? वह कितनी ऊष्णता में है, कितना शीतल है? वह कितना प्रेरणा दायक है? पृथ्वी का जितना गर्भ विज्ञान है, पृथ्वी में जितना भी विज्ञान गति कर रहा है, भूविज्ञान जितना भी है, प्राण के द्वारा उसकी सुगन्ध में उसकी घ्राणेन्द्रियों में, वह समाहित होने लगता है। मुझे स्मरण आता रहता है, भृंगी ऋषि महाराज इतने विज्ञान में रत रहते थे कि वह पृथ्वी के ऊपर ही वायुमण्डल में जो तरंगे गति करती रहती थी। उसको वह जानते रहते थे, और जानने के पश्चात उसके ब्राह्य जगत में लाते रहते थे।

परिणाम क्या? मुनिवरो! यह जो प्राण शक्ति है, यह जो घ्राण–शक्ति है इसके ऊपर हमारा आधिपत्य होना चाहिये। इसमें दो देवता विद्यमान हैं। एक कश्यप विद्यमान हैं, एक ''मित्रणेस्तुति'' विद्यमान है। एक ''चन्द्र–स्वर'' में कहलाता है, एक ''सूर्य–स्वर'' कहलाता है। एक में शीतल गति हो रही है और एक में ऊष्ण गति हो रही है। इन दोनों गतियों को जानने वाला एक महन बना रहता है, वह महान कहलाता है।

मुझे स्मरण है, इस प्राण के द्वारा चिकित्सा भी होती है। मैंने बहुत पुरातनकाल में एक ऋषि को दृष्टिपात किया। उनका नाम था केत्वक ऋषि महाराज। केत्वक ऋषि महाराज भी उद्दालक गोत्रीय कहलाते थे। केत्वक ऋषि महाराज भंयकर वन में ''चन्द्र स्वर'' पर और ''सूर्य स्वर'' पर अनुसन्धान कर रहे थे। उन्होंने कहा कि मानव के शरीर में जो भी रोग होता है तो प्राण चला जाता है, प्राण की शक्ति सूक्ष्म हो जाती है। ''मनीराम'' वही नृत्य करता है। तो इसलिए ऋषि ने कहा और वह जो प्राण शक्ति चली जाती है रूग्ण के रूग्ण अब्रहेः' वह रूग्ण क्यों होता है? क्योंकि इस वायुमण्डल में दो प्रकार की गति होती है। एक शीतल वह होती है, एक ऊष्ण होती है। वह जो शीतल गति है, ऊष्ण गति है, तो कही–कहीं दोनों का विवाद हो जाता है, दोनों की एकता हो जाती है। दोनों जहाँ एक सूत्र में आ जाते हैं वहीं मानव रूग्ण रहने लगता है। कहीं शीतलता विशेष बन गई है, कहीं ऊष्ण गति विशेष बन गई है। तो ऋषिजनों ने यह विचारा कि अब हम प्राण–शक्ति को जानना चाहते हैं। तो उनमें ऊष्णता प्रबल हो गई है, तो उन्होंने चन्द्र स्वरों का प्राणायाम करना प्रारम्भ किया। जब वे प्राणायाम करने लगे तो उस ऊष्णता में शीतलता आ गयी और मानव स्वस्थ बन गया और कहीं शीतलता आ गयी तो उसमें सूर्य प्राणायाम किया तो परिणाम यह हुआ कि शीतलता दूर चली गयी। बेटा! वह प्राण चिकित्सा कहलाती है।

हमारे यहाँ परम्परा से ही प्राण चिकित्सा ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में रची है। यह प्राण चिकित्सा एक काल में नहीं परम्परा से प्राण–चिकित्सा है जिससे वेद के ऋषियों ने कहा कि प्रत्येक प्राणी को प्राणायाम करना चाहिये क्योंकि प्राणायाम करने वाला जो मानव होता है वह ब्रह्मचारी रहता है। तो इसलिए प्रत्येक मेरी पुत्री को भी प्राणायाम करना चाहिये। कहीं ''सूर्य प्राणायाम'' है तो कहीं ''चन्द्र प्राणायाम'' है। दोनों प्रकार के प्राणायामों में मानव को सुसज्जित रहना चाहिये, उसी में गति करना चाहिये।

देखो, यह प्राण चिकित्सा कहलाती है। इसको हमारे वैद्यराज परम्परा से ही जानते हैं। उसमें यह है कि जैसे नाना प्रकार की वनस्पतियां माता वसुन्धरा के गर्भ में विद्यमान रहती हैं, वे जो नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं, वे जो वायु मण्डल में, वायु की तरंगों में मिश्रित हो जाती हैं, स्वतः ही मिश्रित रहती हैं। जब मानव प्राणायाम करता है तो देखो, ''सूर्य प्राणायाम'' करता है तो जो उस समय औषधियों का प्रवाह है, तरंगें हैं, वे तरंगे प्राण के साथ में

नृत्य करती हैं और यदि शीतलता को लाना है तो चन्द्र प्राणायाम करने से वायु मण्डल में जो शीतल औषध है, वनस्पतियां हैं वे जो उनकी तरंगे में उनकी सुगन्ध जो गति करती हैं वह शीतल, शीतल ही परमाणुओं को अपने में लाने का प्रयास होता रहा है।

परिणाम क्या? यह ''प्राण चिकित्सा'' है। आज मैं ''प्राण चिकित्सा'' के सन्म्बन्ध में विशेष विवेचना देना नहीं चाहता हूं केवल यह कि कोई मानव रूग्ण हो गया है जिससे शीतलता आ गई है, उसे ''सूर्य प्राणायाम'' करना चाहिये और जिसे ऊष्णता आ गई है, उसे ''चन्द्र प्राणायाम'' करना चाहिये। दोनों प्रकार के प्राणायाम करने से मानव का स्वास्थ्य सुन्दर रहता है, पुरूजीत रहता है। मुझे स्मरण है, सुधन्वा नाम के वैद्यराज थे, वह सूर्य प्राणायाम तथा चन्द्र प्राणायाम को जानते थे, तुम्हें ''प्राणाम् वृहि वृत्ताः प्रतीत होगा जब राम और रावण को, दोनों का संग्राम हो रहा था, जिस समय संग्राम हो रहा था जब महाराजा मेघनाथ ने मेरे प्यारे! ऊष्ण–शक्ति महाराजा लक्ष्मण के ऊपर प्रहार की जिससे महाराजा लक्ष्मण मूर्छित हो गए, मानो प्राण शुष्क बन गए। तो देखो, सुधन्वा को लाया गया और सुधन्वा वैद्यराज से राम ने प्रार्थना की कि महाराज! यह मेरा विधाता है, यह मूर्छित हो गया है, मृतक के समान बन गया है। उन्होंने कहा भाई! मैं तो नहीं जानता, परन्तु देखो, मेरे द्वारा वह औषधि नहीं है। 'ऋषि–मुख पर्वत' पर औषध है। तो देखो! हनुमान जी जब उस औषध को लाए तो 'ब्रह्म वृत्तः देवत्याम्' महाराजा सुधन्वा ने प्राणायाम किया और प्राणायाम करके उस अपनी 'प्राण–शक्ति' के द्वारा लक्ष्मण के द्वारा वह प्राण–शक्ति उन्होंने उसमें भरण की और उस औषध के द्वारा उन्होंने शीतल प्राणायाम किया और शीतल प्राणायाम लक्ष्मण को कराया, उनकी मूर्छा समाप्त हो गयी। परिणाम यह हुआ कि पुनः से उनमें प्राण–शक्ति आ गयी। वह प्राणायाम शक्ति कहलाती है।

आज मैं तुम्हें विशेषता प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल तुम्हें यह वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ के हे मानव! आज हम अपनी मानवता में, अपने आत्म–लोक में प्रवेश होने से पूर्व हमें इस प्रकार का क्रियाकलाप हमारे मस्तिष्कों में, हमारी क्रिया में होना चाहिए। तो वह क्रिया में क्या होता रहा? तो उन्होंने प्राणायाम किया। यह प्राणायाम की क्रिया हमारे यहाँ परम्परा से ही थी, आज से नहीं। मैं वर्तमान के काल की ही चर्चा नहीं, मैं उस काल की भी चर्चा करता रहता हूँ, जहाँ वशिष्ठ और अरून्धति माता दोनों प्राणायाम करते थे। पति–पत्नी यह चाहते है कि हमारे गृह में सुंदर संतान का जन्म हो, तो प्राणायाम करें। सूर्य और चंद्र प्राणायाम करने से उनमें ब्रह्मचर्य की शक्ति, 'ब्रह्मचरिष्यामि' आती है, बल आता है, पवित्रता आती है तो गृह में संतान का जन्म होगा और वह संतान पिता से पहले उसका निधन नही होगा। तो परिणाम क्या? पिता से पहले प्रथम पुत्र–पुत्री का निधन नहीं हो इसका भी 'प्राण–चिकित्सा' से सन्म्बन्ध रहता है। तो मेरे प्यारे! इसीलिए हमारे यहाँ जहाँ 'औषधि चिकित्सा' है वहीं प्राण–चिकित्सा ऋषि–मुनियों में परम्परा से रही है।

आज मैं बेटा! इस सन्म्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। ऋषि–मुनि रूग्ण नहीं होते थे, क्योंकि वे प्राण से प्राणायाम करते 'शीतली–प्राणायाम' होता है। एक 'खेचरी मुद्रा प्राणायाम' होता है। ये नाना प्रकार के प्राणायाम होते हैं जिनको करने से मानव के द्वारा रोग नहीं होता। वे रोगों से दूर रहते हैं, उस मानव का जीवन सुंदर बना रहता है, सुसज्जित रहता है।

मेरे पुत्रो! विचार–विनिमय क्या? जब साधक विद्यमान होता है तो वाक्–वाक् कह करके प्राणः–प्राणः कहता है और दो समय उच्चारण करता है और दो समय उच्चारण करता है प्राणः–प्राणः। तो इसीलिए घ्राणेन्द्रियों के द्वारा हम प्राणायाम करें और इस प्राण–चिकित्सा के कारण हमारा मानवीय जीवन पवित्र रहता है, मानवीय जीवन में एक महत्ता रहती है। परन्तु देखो! हम जो इस संसार में आते हैं, वह आत्म–लोक में जाने के लिए आते हैं, हमारा आत्म–लोक पवित्र होना चाहिए।

देखो, वाक्–वाक् कह करके प्राणः–प्राणः कह करके प्राण–चिकित्सा आती रहती है। हमारा प्राण पवित्र होना चाहिए। हमारे इस मानव शरीर में एक प्राण नहीं पांच प्राण हैं जो कार्य करते रहते हैं अथवा नृत्य करते रहते हैं। आज मैं कोई विशेष चर्चा में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार–विनिमय क्या कि प्राण की शक्ति को जानने के लिए मानव के द्वारा अनुसन्धान होना चाहिए।

आज का विचार–विनिमय क्या है? मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट कराने नहीं आया हूँ। मैं साधकों के क्षेत्र में तुम्हें लाया हूँ जहाँ साधक विद्यमान हो करके आत्म–लोक में जाने के लिए सबसे प्रथम अपनी इन्द्रियों पर, अपने वाक् पर, अपनी घ्राणेन्द्रियों पर कितना आधिपत्य करते हैं? कितना उनका अनुसन्धान होना चाहिए? यह चर्चाएँ मैं तुम्हें कराने के लिए आया हूँ।

अब बेटा! मैं अपने विचारों को विराम देने जाऊँगा। परिणाम क्या हुआ इन वाक्यों के उच्चारण करने का कि हमारे द्वारा तीन आचमन होने चाहिए। आचमन में त्रि–विद्या का भान और प्रेरणा होनी चाहिए और वह जो वाक्–शक्ति है वह कितनी पवित्र हो और प्राण–शक्ति में कितनी महत्ता होनी चाहिए? ये प्रण–शक्ति ही चिकित्सा का मूलक है। मानव को सुसज्जित बनाता है, मानव को सुडौल बनाता रहता है। देखो, अपान, उदान,समान, ध्यान ये चार प्राण और हैं, मैं इनकी विवेचना कल ही प्रगट करूँगा।

आज का विचार–विनिमय क्या कि हम प्राणों को, हम कुम्भक प्राणायाम करते हैं, हम रेचक करते हैं, हम पूरक करते हैं। इन प्राणायामों के द्वारा मानव कहाँ–कहाँ चला जाता है? जो कुम्भक प्राण को जानता है वह जाल ऐसे गति करता है जैसे पृथ्वी पर घ्राणी गति कर रहा हो। जो रेचक को जानता है वह वायु की तंरगों को जानने लगता है, वायु में कौन–सी तंरगों की गति हो रही है? क्या–क्या गतियां हो रही हैं, किस प्रकार की गतियां हैं? उनको जानने लगता है।

बेटा! जो रेचक , कुम्भक और पूरक हैं। वह जो पूरे है आगे 'अब्रतम् ब्रह्म वृत्तः देवः' वह अन्तरिक्ष में जो नाना प्रकार की अग्नियां गति करती हैं वह उनको जानने लगता है।

मुनिवरो! देखो, विचार–विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें साधको के क्षेत्र में ले आया हूँ। कल मुझे समय मिलेगा तो यह कल मै विवेचना कर सकूंगा कि ये जो चारों आगे प्राण हैं, इन प्राणों की क्या–क्या विशेषता है? ये प्राण क्या–क्या करते हैं? ये मै। कल चर्चाएं प्रगट करूँगा। बाह्यजगत्, आन्तरिक जगत् की चर्चाएं ऋषि–मुनि परम्परा से ही करते रहे है।

विचार विनिमय क्या? मुनिवरों देखो! सोमकेतु ऋषि महाराज भारद्वाज ने साधकों के क्षेत्र में अपनी विवेचनाएं प्रगट की हैं और उन्होंने कहा, हे ऋषियों! आज तुम इसीलियें मेरे द्वार पर आयें हो कि हमारा मानवत्त्व ऊँचा बनना चाहिए। 'मानव गृहि वृत्तः देवत्यम्' और मानव आत्म–लोक में जाना चाहता है। तो बेटा! आत्म–लोक की चर्चाएं आगे मैं कल प्रगट करूँगा।

आज तो हम केवल इतना उच्चारण कर पाये हैं तो हमारा वाक्–शक्ति पवित्र हो। हमारी उन घ्राणेन्द्रियों में कितना विज्ञान है, कितनी परि–चिकित्सा है? ये चर्चाएं मैं आगे कल प्रगट कर पाऊंगा। प्राणों को जानना, उसके पश्चात वाक्–घ्राण के द्वारा जो आगे स्वर्ग में जीने की, मोक्ष में जाने के लिये, ब्रह्म से मिलन करने के लिये, आत्म–लोक को जाने के लिये बेटा! हमें कौन–कौन सी पगडण्डियों को अपनाना है और कौन–कौन सी श्रेणियों को अपना करके हम ब्रह्म–लोक में जायेंगे। ये चर्चाएं हम कल प्रगट करेंगें।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हमें अपने मानवत्व को बनाने के लिये कितना चिन्तन करना है, मनन करना है? हमें मनीषि बनना है। मनीषि कौन होता है? पुत्रों! मनीषि वह होता है जो मनन करता है। जो चिन्तन करता है, वह मनीषि कहलाता है।

आओ मेरे पुत्रो! आज का विचार–विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुये, उस देव की महिमा का गुणगान गाते हुये हम अपने मानवत्व को, बाह्य–जगत् को सबसे प्रथम ऊंचा बनाये। उसके पश्चात हम आन्तरिक लोक में प्रवेश करेंगे। आन्तरिक लोक और बाह्य लोक की चर्चाएं कल प्रगट करेगें। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा, उसके पश्चात यह वार्ता समाप्त हो जायेगी। वेद पाठ। **रघुनाथ मन्दिर अमृतसर**

२. द्वितीय अध्याय–अपने को अपने में दृष्टिपात करें 03–07–1987

जीते रहो!

आत्म लोक

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र उसकी प्रतिभा का वर्णन कर रहा है, और उसे निर्णय कर रहा है कि वह इस प्रकृति के कण–कण में ओत–प्रोत है। संसार का ऐसा कोई स्थान नहीं हैं, पर्वतों की ऐसी कोई गुफा नहीं, समुद्रों की तंरगें नहीं जहाँ वह परमपिता परमात्मा विद्यमान न हो, क्योंकि वह सर्वत्र ओत–प्रोत है इसीलिए हमारे यहाँ प्रत्येक वेदमंत्र बेटा! एक सूत्र का वर्णन करता है।

वह परमपिता परमात्मा एक सूत्रमय है। यह ब्रह्माण्ड सर्वत्र एक सूत्र में पिरोया हुआ–सा दृष्टिपात आता है। जब इस संसार को हम दृष्टिपात करने लगते हैं तो यह ब्रह्माण्ड एक सूत्र में पिरोया हुआ, एक आभा में ओत–प्रोत होता हुआ दृष्टिपात आता है। नाना प्रकार के लोक–लोकांतर एक–दूसरे मे आभासित हो रहे हैं, एक–दूसरे में यह ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ सा, ये लोक–लोकांतर एक–दूसरे में पिरोए हुए से दृष्टिपात आते हैं। जब इनके ऊपर गम्भीरता से विचार विनिमय करने लगते हैं तो विचार आता है कि परमपिता परमात्मा का यह कैसा अमूल्य जगत् है? एक लोक है, द्वितीय मण्डल एक दूसरे में, एक दूसरे का सहायक बना हुआ है। जैसे माला का प्रत्येक मनका एक सूत्र में पिरोया हुआ है। नाना मनके हैं, परन्तु उनका सूत्र केवल एक ही है और जब सूत्र में वे ओत–प्रोत हो जाते हैं, अथवा पिरोये जाते हैं तो वह एक माला बन जाती है। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड है, उस मेरे प्यारे प्रभु का एक माला के सदृश ब्रह्माण्ड विचारकों को दृष्टिपात आता है। योगियों को समाधि के द्वारा प्राप्त होता है। योगीजन जब समाधिस्थ हो जाता है, तो यह ब्राह्य जगत क्या, आन्तरिक जगत हो, यह उस मानव देह के एक सूत्र को ही जानता रहता है। उसी एक सूत्र का अनुभव करता रहता है और उसी सूत्र का अनुभव करने वाला योगेश्वर कहलाता है।

आओ मेरे पुत्रों! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूं। विचार यह कि हमारा वेदमन्त्र यह कहता है कि यह नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों वाला जो अमूल्य जगत है यह एक सूत्र में पिरोया हुआ है। इसी प्रकार मानव को भी माला को धारण कर लेना चाहिये। प्रत्येक मानव यह चाहता है कि मैं माला को धारण करने वाला बनूं परन्तु माला कौन धारण करता है? पुत्रों! योगीजन करते है, साधक करते हैं जो साधना करते हैं, वे माला को अपने कण्ठ में धारण कर लेते हैं। वे जानते हैं कि मानव को इस संसार में आने का उद्देश्य क्या है? क्योंकि प्रत्येक मानव यह विचारता है कि यह संसार क्या है कि यह संसार क्या है? इस संसार में हमारा अस्तित्व क्या है और हम इस संसार में क्यों आये हैं? प्रत्येक मानव आज नहीं, परम्परा से यह उड़ान उड़ता रहता है।

आज हम इस सन्मबन्ध में कोई अपनी उड़ान उड़ना नहीं चाहते हैं। केवल विचार–विनियम यह कि हमारी सदैव एक ही कमाना रहती है कि हम ''आत्म तत्व'' को जानना चाहते हैं, आकांक्षा लगी रहती है कि हम आत्मा को जानना चाहते हैं जो आत्म तत्व अब्रहे। यह कैसा अनुपम जगत् है बेटा! जिस स्थली में यह आत्मा रहता है, परन्तु यह मानव उस अन्तरात्मा को, जिसके कारण मानव शरीर क्रियाशील बना रहता है, जिसके कारण यह क्रियाशील है, उसको नहीं जानता। हे मानव! यह कैसा विचित्र तेरा अनुपम जगत् है जिसमें तू क्रीड़ा कर रहा है और तू अपनेपन को ही नहीं जानता, यह कैसा अनुपम आश्चर्य है? चेतना बनी रहती है। चेतना के जाने के पश्चात शून्य है। परन्तु उस चेतना को नहीं जानते जिसके कारण तुम चेतनित बने हुये हो। तो आओ, मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें उस क्रियाकलाप वाले क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं जिस क्षेत्र में जाने के पश्चात मानव कुछ चिन्तन करता है अथवा कुछ मनन करता है।

इससे पूर्वकाल में हम आत्म लोकों की चर्चा कर रहे थे। आत्म लोक में तुम्हें ले जाना चाहता हैं। आत्म लोक क्या है? मेरे प्यारे! जब तक मानव का भोज्य पवित्र नहीं बनेगा तब तक हम आत्मा के लोक को कैसे प्राप्त कर सकेंगे? तो मेरे प्यारे! आत्म लोक की चर्चाएं हम करते चले जा रहे थे। आत्मा का लोक क्या है? जहाँ आत्मा वास करता हो वही उसका लोक कहलाया जाता है। जहाँ भी मानव वास करता है वह उसका लोक है। तो हमारे यहाँ आया है कि हम आत्म लोक में जाना चाहते हैं, आत्मा को जानना चाहते हैं।

आत्म लोक क्या है? अयोध्यापुरी है जहाँ यह आत्म वास करता है। यह कैसी अयोध्यापुरी है? जहाँ अष्ट चक्र और नौ द्वार कहलाए जाते हैं। अष्ट चक्र वाली और नौ द्वारों वाली यह पुरी है और इस पुरी में वास कौन कर रहा है? पुत्रों! यह आत्मा है, वह रमेति है, वह उसमें रमण कर रहा है। मेरे प्यारे देखो! पंच अग्नि, जब पांच अग्नियां जागरूक हो जाती हैं, जिव्हा वाली अग्नि मानव को दृष्टिपात आने लगती है, तो इस अनुपमता में, यह मानव आश्चर्य में चकित हो जाता है।

आओ मेरे प्यारे! आत्म लोक की चर्चाएं, आत्मा का लोक यह कैसा विचित्र है, कैसी सुन्दर पुरी है? जिस पुरी में अष्ट चक्र हैं, नौ द्वार हैं परन्तु आत्मा इन नौ द्वारों वाले गृह में वास करता है। केसी विचित्र प्रभु की यह रचना है, कैसी महान है? इसमें योगीजन समाधिस्थ हो जाते हैं, इसी के द्वारा मानव आत्म लोक के लिए ब्रह्मचर्य को धारण करता है। 'सप्त अस्तेय' में चला जाता है–सप्त अस्तेय ब्रह्मचर्य तपः – इन क्षेत्र कें में परिणत होने लगता है।

मैं प्राण की चर्चाएं कर रहा था। प्राणों की विवेचना हमने पूर्व काल में भी प्रकट की है। आज भी आत्मा लोक जानने के लिए प्राणों का जानना बहुत अनिवार्य है। हम लोक को कैसे जानेंगे जब तक हम प्राणों को शुद्ध रूप से नहीं जान सकते। इससे पूर्व काल में मैं प्राण की विवेचना कर रहा था, यह प्राण कितना विशिष्ट और कितना महान है। करोड़ों परमाणु आन्तरिक से इस मानवीय शरीर से बाह्य जगत में प्रवेश करते हैं और अरबों–खरबों परमाणु बाह्य जगत से आन्तरिक जगत में प्रवेश करते हैं। प्रत्येक श्वास के साथ मानव का चित्र उस प्राण के साथ में आंतरिक्ष में गति करता है।

मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुये कहा था हमारे यहाँ नाना प्रकार के वैज्ञानिक इस प्रकार के हुये हैं जिन्होंने श्वास की तमोगुगी, सतोगुणी प्रवृत्तियों को जाना है। ऋषि ऐसे वैज्ञानिक हुये जिन्होंने याग के द्वार अपने यन्त्रों में जिस प्रकार का वह श्वास हैं, जिस प्रकार का उसमें तत्व प्रधान है, उसका चित्रण होता रहा है। उसी प्रकार मानव का क्रियाकलाप और उसी जो मुखारविन्द की जो रचना है वह भी उसी प्रकार के चित्रों में दृष्टिपात आती रहती है। इसलिए हमारे आचार्यों ने इस मानवता के सन्मबन्ध में मानवीय दर्शन को चिन्तन करने के लिए बहुत परिश्रम किया है और अनुसन्धान किया है।

आओ मेरे प्यारे! हम भी कुछ अनुसन्धानमयी चर्चाओं को प्रकट करते चले जाये। अनुसन्धान क्या किया ''प्राणः प्राणः बृहिः वृताः– ये प्राण हैं इस प्राण के ही पांच भाग माने जाते हैं जैसे प्राण है, और अपान है। अपान प्राण यदि नहीं होगा तो सर्वत्र प्राणी सूर्य में स्थित हो जायेंगे। सूर्य की किरण अपने में धारण कर सकती है। गुरूत्व धारण करने वाली एक अपान शक्ति है जो लोक–लोकान्तरों में तुम्हें दृष्टपात आयेगी। जिस भी लोक में तुम गति करने लगोगे वही तुम्हें अपान दृष्टिपात आने लगेगा। वह एक दूसरे से आभासित नहीं होने दे हा है। परन्तु देखो! जिस भी मण्डल में पहुंचोगे वहीं तुम्हें ये अपान की प्रवृत्तियां प्राप्त होंगी। अन्यथा ये एक दूसरे के सहायक बने हुये जो ये मण्डल हैं, ये लोक–लोकान्तर हैं एक दूसरे के ये सहायक नहीं रहेंगे।

इसी प्रकार यह जो अपान प्राण कहलाता है, जो पृथ्वी को अपने गुरूत्व में धारण कर रहा है। नाना लोकों को धारण कर रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, यह जो अपान है जब पृथ्वी के गर्भ में परिणत हो जाओगे तो उस समय तुम्हें पृथ्वी के गर्भमें एक नवीन ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आयेगा, नवीन एक अग्नि प्राप्त होगी, उस अग्नि का अपान प्राण से सम्बंध है। अग्नियां नाना प्रकार की आभा में गति करने वाली हैं।

विचार–विनिमय क्या? मुनिवरो! देखो, अपान एक प्राण है जो अपनी ध्रुवा गति से मानव को स्थित करने वाला है। इसलिए हमारे ऋषि मुनियों ने प्राण और अपान दोनों का जब मिलान किया, कुम्भक प्राणायाम किया तो पृथ्वी से वे ऊर्ध्वा में गति करने के लिए जैसे पक्षी अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ता है ऐसे योगीजन अपने में उड़ान उड़ने लगता है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा था। ऋषिजनों की ऐसी प्रवृत्ति बन जाती है, जब प्राणों को जान लेता है कि वह वायुमण्डल में से उन परमाणुओं को धारण कर लेता है जिन परमाणुओं से माता के गर्भ स्थल में बालक का निर्माण होता है। परन्तु देखो! उससे नस–नाड़ियां, अस्थियां आदि निर्मित कर लेता है। उन्हें धारण कर लेता है, उन्हें धारण कर लेता है, उन्हें त्याग भी देता है और अपनी अवस्था में सूक्ष्म शरीरों को प्राप्त होता रहता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था, इस अपान प्राण के ऊपर ऋषियों ने बहुत अनुसन्धान किया है। अनुसन्धानवेत्ताओं ने यहाँ तक किया है कि वह स्थिर हो करके अपनी अपान क्रिया के द्वारा कुम्भक अपान–प्राण के द्वारा योगीजन लोक–लोकान्तरों की उड़ान भी उड़ने लगता है तो मेरे पुत्रों! मैं आज कहीं दूर चला गया हूं। विचार यह है कि अपान प्राण ही पृथ्वी के गर्भ में, इस मानवीय जगत से पृथक हो करके जब विचारोगे तो यह अपना ही नाना प्रकार की खनिजों का एक मूल बना हुआ है, वही ध्रुवा गति उसको प्रदान कर रहा है।

विचार क्या? प्राण,अपान और व्यान। मेरे प्यारे! व्यान जो प्राण है यह उदर में रहता है, मानव के उदर में रहता है और उदर में भी मानव आहार करता है वह व्यान उसका रस बना देता है। इसी प्रकार ब्राह्य जगत में जो परमाणुवाद गति कर रहा है उसका रसों में परिवर्तन करता हुए एक परमाणु, एक तरंग दूसरे को निगल रही है और वह तृतीय तरंग को उत्पन्न कर रही है उन्हीं तरंगों से यह जगत निर्मित हो रहा है, उसी से इस वायुमण्डल का निर्माण होता रहता है। अन्तरिक्ष में वे ही तरंगे जो तंरगित होती रहती हैं।

व्यान जो प्राण है जैसे आन्तरिक जगत में रसों का प्रतिनिधि है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार की तरंगों का बाह्य जगत में भी प्रतिनिधि कहलाता है। मेरे प्यारे! यह तरंगों को एक दूसरे में आदान प्रदान कर रहा है। जिससे वह जगत एक क्रिया में दृष्टिपात आता है। रसों का स्वादन, अब मुनिवरों! देखो जो सामान्य प्राण है वह रस का स्वादन कर रहा है। पृथ्वी के गर्भ में परिणत होंगे तो वहाँ भी विभाजन क्रिया चल रही है, रसों का आदान–प्रदान चल रहा है। अन्तरिक्ष में गति करोगे तो वहाँ भी एक दूसरा, एक दूसरे में गति करता हुआ यह जगत दृष्टिपात आयेगा। यह रसों का स्वादन होता हुआ दृष्टिपात आता है। समुन्द्रों की तरंगों में जाओगे वहाँ भी सामान्य प्राण के द्वारा रसों का आदान–प्रदान है, जो सामान्य गति कर रहा है, जो सर्वत्रता में गति कर रहा है।

मेरे पुत्रों देखो! विचार–विनिमय क्या? बाह्य जगत, आन्तरिक जगत में इन रसों को ले करके नाना नस नाड़ियों में, नाना नाड़ियों में नाना इन्द्रियों में रसों को प्रदान कर रहा है अथवा ओत प्रोत करा रहा है। यह प्राणों की विशेषता मानी जाती है जो बाह्य जगत, आन्तरिक जगत में क्रिया कलाप हो रहा है वह स्वतः ही हो रहा है।

इसी प्रकार वह प्राणम वृहिः कृताः उसी आभा में उदान प्राण रह जाता है। उदान–प्राण क्या करता है? उदान प्राण कण्ठ के भाग में रहता है और बाह्य जगत में, यह उर प्रगतियों में रहता है। वह जो उदान प्राण है वही तो जिस समय मानव इस शरीर को त्यागता है, यह उदान प्राण ही चित्त के मण्डल से इसका समन्वय होता है और जब समन्वय होता तो चित्त के मण्डल को ले करके यह आत्मा को अपने ऊपर विश्राम कराता हुआ इस शरीर को त्याग देता है तो परिणाम क्या?मुनिवरो देखो! यह उदान प्राण कहलाता है। उदान के द्वारा ही इस शरीर को त्यागता उदान प्राणी ही है, जो आत्म तत्व को इस मानव के चित्त के मण्डल को एक दूसरे, एक स्थान से दूसरे स्थान पर यह प्रदान कर देता है, ओत–प्रोत करा देता है।

परिणाम क्या? कि ये पांचों प्राण कहलाते हैं जो प्राणःप्राणः कह रहा है, प्राणायाम करने वाला यह जानता है कि मैं आत्मा के लोक में विराजमान हूं। यह आत्मा का लोक है, पांच अग्नियां हैं पांचों प्राण रूपी अग्नियां हैं जब ये प्रदीप्त हो जाती हैं तो इस अयोध्यापुरी में पांचो अग्नियां जागरूक हो जाती हैं जब मानव सुषुप्ति में चला जाता है। तो ये पंच अग्नियां ही प्रकाश देती हैं। ये जागरूक रहती हैं। मेरे पुत्रों! ये पांच प्राण हैं जो गति करते रहते हैं, जो आभा में रमण करते हैं परिणाम क्या? प्राणःप्राणः से ऋषियों ने प्राण की विवेचना की है।

तो इसके पश्चात तृतीय जो पौड़ी आती है, जो एक आभा आती है उसका नाम है चक्षु, चक्षुः चक्षुः आता है। ये जो चक्षु हैं, कैसे प्रिय हैं बेटा ! ये दो चक्षु कहलाते हैं एक में विश्वामित्र विद्यमान हैं, एक में कश्यप विद्यमान है। ये दो देवता दोनों द्वारों पर विद्यमान है। हे मानव! यदि तू आत्म लोक में प्रवेश करना चाहता है तो संसार को तू मित्र की दृष्टि से दृष्टिपात कर। यह संसार तेरा एक कुटुम्ब है इसको तू मित्र की दृष्टि कर। तेरा सर्वत्र ब्रह्माण्ड यह मित्र है। विश्व का मित्र बन करके मानव प्रियता को प्राप्त हो जाता है यह कैसे मित्र है? यह मानव को अमर बना देता है मानव को अमृत ज्योति प्रदान कर देता है।

मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय हम गन्धर्व लोक में चले गये। उस गन्धर्व लोक में जब चले गये तो वहाँ श्वेतकेतु नामक राजा यह अनुसंधाान कर रहा था कि मैं नेत्रों से सुदृष्टि ही पान करूँगा। मैं नेत्रों से कुदृष्टिपात नहीं करूँगा। तो वे जब नेत्रों का अनुसन्धान कर रहे थे अथवा परीक्षण मे रहते थे। ध्रुवागति में दृष्टि रहती थी और ऊर्ध्वागति में रहती थी। मध्य क्षेत्र में नहीं रहती थी, उनके नेत्र में एक अनुपम ज्योति आने लगी और वह ज्योति कैसी? जिस मानव को वे दृष्टिपात करते थे वही मानव प्रसन्न दृष्टिपात आने लगा। मानो यह अपने नेत्रों से दृष्टिपात करके अग्नि की आभा प्रकट कर देता है तो वह रसातल को चला जाता है। वह भस्म भी हो जाता है।

मुझे स्मरण आता है, एक समय मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर पहुंचा। मेरे पूज्यपाद नेत्रों के ऊपर अनुसन्धान कर रहे थे। नेत्रों से कुदृष्टिपात नहीं किया जाये, सुदृष्टि ही मानव की रहनी चाहिए। उन्हें 101 वर्ष हो गये सुदृष्टिपात करते हुये। कहते हैं बेटा! जो प्राणी हिंसक आ रहा हो वह प्राणी नेत्रों की ज्योति से ही वह उसी स्थली पर विद्यमान हो जाता था। सर्पराज आ गया है सर्पराज उस नेत्रो की ज्योति से अपनी स्थली में प्रदान हो गया है। विचार आता है कि नेत्रों के द्वारा जब मानव नेत्रों का तप करता है, वह तपस्वी बनता है तो वायुमण्डल की तरंगों में मानव के चित्र विद्यमान हैं। शब्दों के साथ में है उस मानव को वह दिव्यज्योति प्राप्त हो जाती है कि अन्तरिक्ष में जो शब्द विद्यमान है उनके साथ में जो शब्द हैं अथवा चित्र हैं वे उनको दृष्टिपात आने लगता है।

हे मानव! तू अपनी दिव्य दृष्टि को जागरूक कर तेरी दिव्य दृष्टि जब जागरूक हो जाती है तेरी जो सत्ता है वह महान बन जाती है। जिससे तेरा नेत्रोमय जीवन बन जाता है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुये कहा था, आज भी मुझे स्मरण आ रहा है कि नेत्रों की ज्योति से मानव की शक्ति समाप्त हो जाती है। जो अनुशासन की शक्ति है, वह समाप्त हो जाती है। महर्षियों ने जो योग के पहले सूत्र में पहुंचे तो उन्होंने अनुशासन की कल्पना की है। यह कहा है कि योग किसे कहते हैं? तो योगीजन बेटा! अनुशासन का नाम योग का वर्णन करते हैं। यह कहते हैं कि योगीजन सबसे प्रथम अनुशासन करते हैं।

अनुशासन का मीमांसाकार यह कहता है कि अनुशासन नेत्रों से प्रारम्भ होता है। हिंसा भी नेत्रों से प्रारम्भ होती है, अहिंसा भी नेत्रों से प्रारम्भ होती है। हे मानव! तू आज योगी बनाना चाहता है। तू महान बनाना चाहता है तो तेरे नेत्रों में सुदृष्टि रहनी चाहिए। सुसंकल्प रहना चाहिए। यह जो विश्वामित्र नेत्रों में विद्यमान है। एक तेरा नेत्र सूर्य कहलाता है, एक नेत्र चन्द्रमा कहलाता है। जैसे परमात्मा का यह भव्य जगत है। जगत की रचना करने वाले ने, सूर्य और चन्द्रमा उस प्रभु के दोनों नेत्र कहलाते हैं। इसी प्रकार मानव के ये सूर्य और चन्द्र दोनों नेत्र हैं जिसमें एक कश्यप है तो एक में विश्वामित्र हैं। तो इस सारे विश्व में मित्र कौन है, सूर्य है। प्रातः काल उदय होता है। अपनी स्थली से चलता है तो संसार उस मानव को मित्र की दृष्टि से पान करने वाला हो, मित्र की दृष्टि से ही पान करता है। उस काल में वह जो साधक है वह कहता है कि चक्षुः चक्षुः। मेरे ये दोनों चक्षु पवित्र हों। आज हम चक्षुओं को महान बनाना चाहते हैं। चक्षुओं के द्वारा ही मानव धर्म को जानता है। धर्म की मीमांसा करने वालों ने कहा है कि धर्म तो एकाकी कहलाता है। धर्म क्या है? धर्म मानव के नेत्रो से दृष्टिपात होगा नेत्रो मे धर्म समाहित रहता है जब मानव की दिव्य दृष्टि हो जाती है। व्यापक दृष्टि बन जाती है, इस दृष्टि से वह अनेकता को एकता में दृष्टिपात करने लगता है। एक ब्रह्म सूत्र में इस ब्रह्माण्ड को पिरोया हुआ दृष्टिपात करने लगता है।

यह कितना प्रिय मित्र बन जाता है, वह विश्व का मित्र बन जाता है। प्रभु की कृति के द्वारा मानव मित्र बनता है। आज हमें मित्रता को धारण करना है। हमें मित्र बनना है। एक माता है उसे जब संसार का प्रत्येक प्राणी माता ही कहता है तो जानो यह विश्व की माता बन गयी है, वह मित्र बन गई है, कैसी मित्र है? बेटा! यह कैसी ममतामयी है कि जैसे यह ब्रह्माण्ड एक सूत्र में पिरोया है, ऐसे ही मनस्तत्व भी एक सूत्र में पिरोया हुआ दृष्टिपात आने लगता है।

तो आओ मेरे प्यारे! विचार क्या चल रहा है? विचार यह है कि हम चक्षुओं के द्वारा तपस्वी बनें और चक्षुओं के द्वारा तपस्वी बन करके इस अग्नि को हम जागरूक करें जिसके द्वारा हम अंतरिक्ष में रमण करने वाले शब्दों को भी दृष्टिपात कर सकते है। इस पृथ्वी में नाना प्रकार की आभाएं गति करती रहती है, उनको भी हम दृष्टिपात करते रहते हैं। विश्व का मित्र बन करके और ये ''घ्राणाम बृहिः वृत्त देवाः यह चक्षुः चक्षुः अब्रहेः'' मानव उस समय उच्चारण करता है, साधक कहता है प्रभु! मेरे चक्षु पवित्र बन जायें महान् बन जायें। वह महान बन जाए । मैं भगतजन बन करके प्रभु के द्वार पर पहुंच जाऊँ।

तो आज हम बेटा! उन वाक्यों पर विचार–विनिमय करें। उसके पश्चात हमारे यहाँ श्रोत्रम्–श्रोत्रम् आता है। श्रोत्र कहते हैं जो श्रवण कर रहा है। यह श्रवण–शक्ति क्या है? मानव को श्रवण करना चाहिए। शब्दो को श्रवण करना चाहिए । ध्वनि को श्रवण करना चाहिए । इसी ध्वनि के द्वारा मानव के द्वारा जो नाना प्रकार के यन्त्र, मानव के शरीर में जो नाना प्रकार के यन्त्र आदि लगे हुये है, उनमें जो ध्वनियाँ आ रही हैं, उन ध्वनियों को वह स्वीकार करता है।

मुझे स्मरण है सृष्टि के प्रारम्भ में इस शरीर को ही आदि ब्रह्मा जी ने जान करके इसी ध्वनि से व्याकरण की उपलब्धि की थी। व्याकरण को जो विकास हुआ है, शब्दों की जो ध्वनियाँ आती हैं, वे जो हमारे अन्तर्हृदय में इस आन्तरिक जगत् में जो नाना प्रकार के यन्त्रों की ध्वनियाँ आ रही हैं मानव का बाह्य–जगत् इतना विशाल बन गया है कि आन्तरिक ध्वनियों को स्वीकार करने में वञ्चित हो गया है। मेरे प्यारे! वे जो ध्वनियाँ हैं, जिनको योगी, ऋषि साधकों ने इसको अनहद कहा है। इसको ''अनहद ध्वनि'' कहते हैं जिसको योगीजन श्रवण करते हैं, जिसके श्रोत वहीं स्थिति रहते हैं। मानव के द्वारा चित्त में जो आवागमन के संस्कार होते रहते है वे समाप्त होने लगते हैं, वे भस्म होने लगते हैं। तो विचार क्या कि हम अपने श्रोतों के द्वारा उस ध्वनि को स्वीकार करें जो ध्वनि मानव के आवागमन के संस्कारों को नष्ट करने वाली है।

मेरे प्यारे! वे जो श्रवण अब्रहेः है, वे जो श्रवण शक्ति है, वे दर्शनों की भाषा में, मीमांसाकार यह कहते हैं कि दर्शनो में ही उन श्रोतों को लगा रहना चाहिए और दिशाओं से उनका सम्बन्ध हाता है। प्रत्येक दिशा में जैसे विद्युत की जो धारा है, वह उत्तरायण से दक्षिणायन को गति करती है। इस प्रकार जब मानव परिक्रमा करता है तो वह पूर्व से अब्रहः गति की गति करने लगा है। वह जो अभय गति है वही तो मानव को एक अब्रहाः क्षेत्र में ले जाती है। जैसे उत्तरायण से दक्षिणायान को विद्युत की धाराएँ चलती हैं, इसी प्रकार मानव के मुखारविन्द से जो शब्द उत्पन्न होता है उसकी भी गति उत्तरायण से दक्षिणायन को रहती है और वह जो शब्द अब्रहाः गति वह श्रोत्रों में जाती है, इसलिए श्रोत्रम्–श्रोत्रम् कहता है। आचार्य कहता है मेरे श्रोत्र पवित्र बन जायें, मेरी जो श्रवण–शक्ति है वह इतनी विशाल बन जाये, बाह्य–जगत् में जो ध्वनि हो रही है, आन्तरिक जगत् से बाह्य–जगत दोनों का समन्वय हो करके वह एक ध्वनि बन जाये। मैं उसी को श्रवण करने वाला बनूं। तो आत्मा में, आत्म–लोक में जाने की इस प्रकार की यह पौड़ी कहलाती है जिनको सदैव मानव धारण करता रहता है अथवा आभा में परिणत करता रहता है जिससे प्रत्येक मानव के हृदय में एक मानवीय–भाव सदैव उत्पन्न होता रहता है।

आज मैं तुम्हें कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। विचार यह देने आया हूं कि हमारी प्रत्येक इन्द्रिय पवित्र होनी चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय में व्यापकवाद रहना चाहिये। यदि हम आत्म लोक में जाना चाहते हैं तो हमारी मनन करने की जो सत्ता है अथवा शक्ति है वह इतनी गम्भीर और महान होनी चाहिए जिससे प्रत्येक इन्द्रिय के गुणों को जानने वाले हों, प्रत्येक इन्द्रिय के अस्तित्व को हम जानने वाले हों।

वैदिक ऋषियों ने इस मानव शरीर को अयोध्यापुरी कहा है। अयोध्यापुरी कहलाती है, नौ द्वारों वाली पुरी है, अष्टचक्र हैं इसमें इस अयोध्यापुरी को जानना हमारी लिये बहुत अनिवार्य है। इससे तुम्हें एक विशेषता प्राप्त होगी। हमारे दर्शनकारों ने दार्शनिक ऋषियों ने बाह्य–जगत् और आतंरिक दोनों का मिलान किया है अथवा पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों की कल्पना की है, जो ब्रह्माण्ड में दृष्टिपात आता है वही तुम्हें इस पिण्ड में दृष्टिपात आयेगा।

ये जो श्रोत्रेन्द्रियां हैं, इन सर्वत्र इन्द्रियों का सम्बन्ध दक्षिणायान से रहता है। विद्युत की धारा भी उत्तरायण से दक्षिणायन को गति करती है। इसी प्रकार जो शब्द हैं वे शब्द भी मुखारविन्द से हो करके दक्षिणायन को गति करता है। इसलिये श्रोतों का जो सम्बन्ध है वह दक्षिण दिशा से रहता है। ये शब्दों का स्त्रोत कहलाता है, शब्दों की आभा इसी में निहित रहती है।

तो परिणाम क्या? यह जो श्रोत्रेन्द्रियाँ हरैं हमें इनके ऊपर प्रायः अनुसन्धान करना है और हमें अपना मानवत्व को, अपनी आभा को अयोध्यापुरी बनाना है। इसमें रमण करने वाली एकाकी आत्मा है। यह आत्मलोक कहलाया जाता है। मेरे प्यारे! शेष चर्चाएं तो मैं कल ही प्रकट करूँगा।

आज का विचार–विनियम क्या है? आज का विचार यह कहता है कि हमारा मानवत्व इतना विशाल, पवित्र, पवित्र बने, हम साधक बनें मैं इससे आगे की शेष चर्चाएं, आगे की शेष प्रणाली, जो पौड़ियाँ हैं बेटा! आत्मलोक में जाने के लिए कल प्रकट करूँगा।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है कि हम अपने में अपने को सुसज्जित रखें, अपने में महान पवित्र बने रहें जिससे हम अपनी वाणी को, अपने चक्षुओं को, अपने श्रोत्रों को एक व्यापकवाद में ले जाएं। व्यापकवाद का नाम धर्म है, संकीर्णता का नाम अधर्म है। इसीलिये बेटा! व्यापकवाद में धर्म रहता है। मैं धर्म और अनहद की चर्चा कर रहा हूं। कल समय मिलेगा तो मैं अनहद का जो दर्शनकारों ने, आचार्यों ने वर्णन किया है, मैं कल इस अनहदवाद की, ध्वनियों की चर्चाएं कल प्रकट करूँगा।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की अराधना करते हुये अपने को अपने में दृष्टिपात करते रहें। अपने को अपने में ही, व्यापकतावाद, विज्ञान में चले जायें। आचार्यों ने कहा है कि जब तक हम विज्ञान में नहीं जायेंगे, भौतिक विज्ञान को नहीं जानेंगे, आध्यात्मिकवाद में हमारा प्रवेश हो ही नहीं सकता। यह है बेटा! आज का वाक्य। कल मुझे समय मिलेगा शेष चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे। कल आत्मलोक में जाने के लिए हम तत्पर हो जायेंगे।

आज के वाक्य में उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम अपनी नेत्रों की ज्योति को कितना विशाल बना सकते हैं। हम अपने श्रोतों को कितना विशाल बना सकते हैं, हम प्राणों को कितने व्यापक रूप में ले जा सकते हैं। हमारी अध्ययन करने की प्रवृत्ति विशाल होनी चाहिये। यह है बेटा! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन–पाठन होगा। **रघुनाथ मंदिर, अमृतसर**

३. तृतीय अध्याय–ध्वनि एवं प्रतिध्वनि का रहस्य 04–07–1985

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा का वर्णन आता रहता है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नही हुआ है जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके क्योंकि वह सीमा से रहित हैं, वह सीमा में आने वाला नही है। तो इसीलिये बेटा! वह अनन्त कहलाता है।

उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में मानव नाना प्रकार का अपना विचार–विनिमय देता रहता है। नाना प्रकार की विचार धाराएँ परम्परा से ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में अथवा उनके क्रिया–कलापों में भी प्रायः रही है। आज हम परमपिता परमात्मा को केवल इतना उच्चारण करना चाहते हैं कि यह तो परमात्मा का अमूल्य जगत् है, यह जो नाना प्रकार के लोक–लोकान्तरों वाला जगत् है, यह नाना प्रकार की आकाश गड्.गाओं वाला जो जगत है, यह कैसी माला बनी हुई है? एक सूत्र में पिरोया हुआ यह ब्रह्माण्ड जैसे भव साधन ''वृत्यम् दिवश्च ही भा वृत्ताः'' जैसे माला को धारण कर लेता है, इसी प्रकार एक सूत्र में पिरोया हुआ यह आकाश गड्.गाओं वाला जगत् है, इसको ऋषिजन अथवा वैज्ञानिक धारण करते रहते है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में दार्शनिक और भौतिक विज्ञानवेत्ता अपने–अपने आसनों पर विद्यमान हो करके उस प्राण रूपी सूत्र में इस ब्रह्माण्ड को पिरो लेते हैं। ये नाना प्रकार के जो मनके हैं, इन मनकों को एक सूत्र में पिरोने वाला वैज्ञानिक जब इसे पिरो लेता है, तो बेटा! उस समय वह सूत्र मानव की कल्पना ही नहीं रह जाता बल्कि यथार्थ रूपों में दृष्टिपात करने लगता है।

यह सर्व ब्रह्माण्ड एक ही आभा में पिरोया हुआ है। इसमें नाना पृथ्वियाँ हैं, नाना चन्द्रमा हैं, नाना सूर्य हैं, नाना शनि हैं और नाना बृहस्पति कहलाते है। नाना ध्रुवमण्डल कहलाते हैं जो एक ही सूत्र में पिरोये हुये हैं यह एक माला बनी हुयी है। एक दूसरा मण्डल, मण्डलों की परिक्रमा कर रहा है। जैसे सप्तऋषि मण्डल ध्रुव की परिक्रमा कर रहे है। नाना पृथ्वियाँ सूर्य की परिक्रमा कर रही हैं। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी मात्र एक–दूसरे की परिक्रमा कर रहा है, एक दूसरे में पिरोया हुआ–सा दृष्टिपात आता है।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हे इस विज्ञान के युग में ले जाना नहीं चाहता हूँ। केवल यह वाक्य उच्चारण करने के लिये आये हैं कि हमारा जो यह मानवीय शरीर है मानवत्त्व है यह भी बेटा! विज्ञान में पिरोया हुआ है। उसकी प्रत्येक इन्द्रियाँ विज्ञान की गाथा गा रही है। वाणी को दृष्टिपात करके देखो, यह वाणी और ही गाथा गा रही है। घ्राण प्राण की गाथा गा रहा है। ये श्रोत दिशाओं की गाथा गा रहे हैं और चक्षु अग्नि की गाथा गा रहे हैं।

विचार–विनिमय क्या? ''श्रोत्रम् बृहि कृताः'' ये श्रोत दिशाओं की गाथा गा रहे है। इसीलिये हमारे आचार्यो ने कहा कि इस ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एक ही आभा मानी जाती है। जो पिण्ड है वही ब्रह्माण्ड है वही मेरे प्यारे! पिण्डकार बना हुआ है। जब मानव अनुसन्धान करने लगता है, अनुसन्धान की वेदी पर विद्यमान हो जाता है, तो इतना विशाल अनुसन्धान में रत हो जाता है, मानो नेति–नेति का प्रतिपादन करने लगता है।

आओ मेरे पुत्रों! मै तुम्हें कुछ वैज्ञानिक तथ्यों में ले जाने के लिये आया हूँ। उनका जा क्रिया–कलाप है, वह कितना विचित्र रहा है। हमारे यहाँ एक समय महर्षि धुन्धु ऋषि महाराज के यहाँ एक सभा हुई। जिस सभा में बेटा! आत्मा पर विचार–विनिमय करने वाले आत्म–वेत्ता विद्यमान हुये। महर्षि धुन्धु ऋषि महाराज से यह प्रश्न किया गया कि महाराज आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं, आत्म–तत्व को जानने वाले हैं हम यह जानना चाहते हैं कि मानव के चक्षुओं में, मानव के श्रोत्रों में क्या विज्ञान है।

महर्षि धुन्धु ऋषि महाराज तपस्वी थे। उन्होंने कहा, 'हे ऋषियों! हे ब्रह्म के जिज्ञासुओं ! ये जो हमारी श्रोत्र इन्द्रियाँ है इनका सम्बन्ध है श्रवण करने से परन्तु यह घृणात्मक शब्दों को भी ग्रहण करता है और आत्मा के जो अनुकूल दर्शनों से गुँथा हुआ शब्द है उसे भी ग्रहण करता है परन्तु प्रत्येक शब्द को देखो! उसको वायुमण्डल में त्याग देता है और वायु–मण्डल में यह गति करते लगता है। इस शब्द की गति बड़ी विशाल मानी जाती है। जब मानव शब्दों का उच्चारण करता है वे शब्द श्रोत्रों में जाते हैं जितने समय मे यह मानव के मुखारबिन्द से श्रोत्रो तक आते है उतने समय में यह पृथ्वी की 105 परिक्रमा कर जाता है। यह शब्द एक क्षण समय में 117 परिक्रमा का वादन आता रहता है। परन्तु देखो! यह जो शब्द है जो श्रोत्रों में आता है इससे मानव पवित्र बनता है। एक मानव दर्शनों का अध्ययन कर रहा है, दर्शनों की गाथा को श्रवण कर रहा है। मानव इससे पवित्र बन रहा है। शान्त मुद्रा में है, भौतिकवाद में इतना रत रहने के पश्चात भी जब यह श्रोत्रों से दर्शनों की गाथा को श्रवण करता है, तासे यह मन्, बुद्धि, चित्त, अहंकार की अपनी साम्यवस्था में निद्रा को प्राप्त होने लगता है। मुझे स्मरण है पुत्रो! द्वापर के काल में यही शब्द था जो महाभारत का मूल बना। महाभारत के संग्राम का मूल शब्द ही बना है। जब इंद्रप्रस्थ में महाराजा युधिष्ठिर ने एक सुंदर गृह का निर्माण किया। उस गृह में नाना शिल्पकारों ने उस गृह का जब निर्माण किया, तो इसमें ऐसी आभा प्राप्त होती थी, जहाँ जल था वहाँ ऐसा प्रतीत होता था जल नहीं है, जहाँ यह था कि जल नहीं है वहाँ जल प्रतीत होता था। जब इंद्रप्रस्थ में याग हुआ, याग के पश्चात जब महाराजा दुर्योधन एक आभा में एक और ही दिशा में चले गए और तब उनकी दशा ऐसी बन गई घृणात्मक कि महारानी द्रौपदी ने एक शब्द कहा था कि ''अन्धे की संतान अंधी होती है'' बेटा! यही शब्द था, जिस शब्द ने उनके अन्तःकरण में ऐसा स्थान बना दिया, ऐसी स्थली बन गयी कि उसे घृणा हो गयी।

वही शब्द है, जो श्रोत्रों से श्रवण कर रहा है। वही शब्द मेरे प्यारे विनाश का मूलक बन गया। वही शब्द राष्ट्र के विनाश का कारण बन गया, और तो नाना कारण बनते ही रहते हैं उन नाना कारणों में एक कारण यह भी बना कि उस शब्द की आभा मानव के अन्तःकरण में स्थली बना लेती है। मेरे प्यारे! वही चित्त में विद्यमान हो जाती है और वह भी शब्द है जो मानव दैत्य से देवता बनते हैं।

दैत्य से देवता कैसे बनते हैं? मेरे प्यारे यही तो शब्द है। एक समय महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज जो वायु मुनि महाराज के साढ़े पड़पौत्र कहलाते थे महाराज कुकुट मुनि महाराज बाल्यावस्था में उनके जो पितर थे, वे महाराजा मनु वंश में राज पुरोहित थे। राज पुरोहित होने के पश्चात वे आंनदपूर्वक ब्रह्मचारी अपना अध्ययन करता था जब अध्ययन से अवतीर्ण हो गया तो वे कुछ पापाचारों में संसार की आभा में परिणत हो गया। परन्तु वे एक समय महर्षि शौनक मुनि महाराज के आश्रम में पहुंच गए भ्रमण करते हुए। युवावस्था थी, शिक्षालय से दूरी हुए, परन्तु कुछ अभिमान था। उनके पिता राज पुरोहित थे, इसीलिए अभिमान था। द्रव्य का भी अभिमान था और भी नाना अभिमान उसके समीप थे। कुछ द्वन्द्व भी बन गए वह भी अभिमान था।

मेरे प्यारे, शौनक मुनि महाराज यह उच्चारण कर रहे थे अपने आश्रम में एकांत स्थली पर विद्यमान हो करके। उनके चरणों में सिंहराज और सर्पराज थे। तो शौनक मुनि महाराज यह उच्चारण कर रहे थे, हे मृगराजों! हे सर्पराजों! तुम भी किसी काल में मेरे जैसे मानव थे, तुम भी किसी काल में मानव थे और तुम अपनी मानव धृष्टता के कारण, तुम ऐसे कर्म करते चले आये, जिससे आज कोई सर्प बना हुआ है, कोई सिंहराज बना हुआ है, कोई मृगराज है और नाना योनियों को प्राप्त है मेरे प्यारे! ऋषि कहता है कि ऊँचे कर्म करना ही मानव का धर्म और कर्त्तव्य है।

मेरे प्यारे वही शब्द, महर्षि कुक्कुट के, ब्रह्मचारी के अन्तःकरण में स्थली बना गये और वे ही ऋषि बने गये। वही वायु–गोत्र मे जन्म लेने वाले महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता हुए और कैसे ब्रह्म–वेत्ता? बेटा! नाना ऋषि आकर के उनसे अपनी शंकाओं का निवारण करते थे। ब्रह्म के सन्बन्ध में भिन्न–भिन्न प्रकार की चर्चाएँ होती रहती थीं। परिणाम यह हुआ कि उनकी प्रज्ञा बुद्धि उसी शब्द ने बुद्धि का मेधा बना दिया मेधा से प्रज्ञा बना दी और प्रज्ञा से ऋतम्भरा बना दी।

यह कैसा शब्द है? तो इसीलिए मुनिवरो! यह शब्द जो मानव श्रवण कर रहा है, उसे श्रवण करने में इतनी विशालता होनी चाहिए जो अपने मानवत्व को ऊँचा बना सके। तो इसीलिए जो मानव श्रवण करता है, उसे श्रवण करने में इतनी महत्ता, इतना मानव को तन्मय होना चाहिए जो शब्दों को अन्तःकरण के और चित्त मण्डल में परिणत कर सकें।

यह शब्दों का एक नृत्य है। कैसा नृत्य होता रहता है? इन्हीं शब्दों के कारण देवता से दैत्य बनते हैं और दैत्यों से देवता बनते हैं मुनिवरो! देखो, विचार क्या कि हमें श्रोत्रों से दार्शनिक शब्दों को , हम अपने उत्थान के शब्दों को सदैव ग्रहण करते रहें। जिससे हम देवता बनें। हम दैत्य बनना नहीं चाहते, हम देवता बनना चाहते हैं देवता बनना चाहिए क्योंकि देवता बनने से यह मानव ऊँचा बनता है।

हमारे यहाँ ऐसा माना जाता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में आदि ब्रह्मा हुए हैं। एक समय कुछ शिष्यों के समीप विद्यमान होकर के ब्रह्म यह विचारने लगे कि ये नाना ध्वनियाँ आ रही हैं, ये ध्वनि 'शब्दमय बृहिः' यह जो नाना प्रकार की ध्वनि आती है, ये क्या हैं? यह ध्वनि–वाद क्या है? तो महर्षि कणकेतु महाराज ने यह कहा कि महाराज यह जो ध्वनि आती है, वह ध्वनि तो एक शब्द 'शब्द अब्रह्मा' एक प्राण है और प्राण की ध्वनियां होती रहती हैं परन्तु प्राणों का जब मिलान होता रहता है, जिसको हम 'ऋत्' और 'सत्' कहते हैं, उनका मिलान होता रहता है। यह ध्वनि होती रहती है। परन्तु इस ध्वनि को जानना ही मानव की मानवता कहलाती है। जब ऋषि ने ऐसा कहा तो ब्रह्मा जी ने यह जाना कि यह जो ध्वनि है क्या हमारे इस मानव शरीर में भी होती है? तो इस पर सोमकेतु ऋषि महाराज ने कहा, महाराज आन्तरिक ध्वनि को जो जान लेता है वह तो ऋषि कहलाता है। प्रभु! जो आन्तरिक ध्वनियों को जानता है वह तो प्रोणश्वर कहलाता है। जब ऐसा उन्होंने वर्णन किया तो आदि ब्रह्मा ने इस ध्वनि को जानना प्रारम्भ किया। हमारे इस शरीर में जो नौ द्वार कहलाते हैं, इन नौ द्वारों में बाह्य ध्वनि आती रहती है और वह जो बाह्य ध्वनि आती है, वह आन्तरिक ध्वनि को श्रवण नहीं होने देती।

ऋषियों ने, आचार्यों ने कहा कि जो बाह्य शब्द आता है, अथवा ध्वनि आती है, उस ध्वनि को और उन द्वारों को हम शान्त करना चाहते हैं तो ऋषि यह विचारने लगा कि इन ध्वनियों को हम कैसे शान्त करें। जो बाह्य जगत से ध्वनि न आये ऐसा कौन सा क्रिया कलाप है? तो ऋषि शान्त मुद्रा में पहुंचे तो उन्होंने सबसे प्रथम जो अपना शब्द है उस शब्द को उच्चारण करना प्रारम्भ किया ध्वनि के द्वारा। जब प्रारम्भ किया तो ध्वनि आने लगी, श्रोतों में शब्द की ध्वनि आने लगी। बाह्य ध्वनि समाप्त हो गई।

उसी ध्वनि को जो श्रोत्र तक दिया जाता था, उसी को शान्त मस्तिष्क में उन्होंने उन्हीं शब्दों को जो ध्वनि थी उस ध्वनि में जो शब्द थे उनको मस्तिष्क में अंकित कर लिया। जैसे लेखनीबद्ध कर देता है, ऐसे ही लेखनीबद्ध मस्तिष्क में उन्हीं शब्दों को मस्तिष्क में वे लेखनीबद्ध जैसे बना दिये गये। परन्तु जब बन गए तो वे अन्तर्ध्यान हो करके उन शब्दों को दृष्टिपात करने लगे।

मेरे प्यारे और गम्भीरता में ऋषि पहुंचे, वह श्रोतों के द्वारों को नेत्रों के द्वारों को सांत्वना दे करके वही अक्षर वे जो कण्ठ में, जो शब्दों का निर्माण करते हैं, उस यन्त्र को दृष्टिपात करने लगे। जब यन्त्र को दृष्टिपात किया तो उसमें भिन्न–भिन्न प्रकार की स्वर ध्वनियों को ऋषि अपने में पान करने लगे। जब ऋषि उनको पान करने लगे तो उनमें जो ध्वनि प्रतिध्वनि, अहा! उच्चारणाति यस्मतम् ध्वनि आ रही थी। वह जो प्राणों का एक दूसरे का मिलान हो रहा था। जैसे प्राण, अपान, उदान। जैसे प्राण बाह्य–जगत से परमाणु लाये और वे श्वास के द्वारा जो ध्वनि हो रही थी, वे जो परमाणु गति कर रहे थे उन परमाणु की, उन तरंगों को जाना। तरंगों को जान करके उसके पश्वात् जहाँ तरंगें जा करके स्थित हो रही थीं और वे जो रसातल होने लगा, तो उसमें एक प्रति ध्वनि आने लगी। उस ध्वनि से नाना प्रकार के शब्दों से उन शब्दों की रचना होने लगी जिसको हम मानो व्याकरण कहते हैं।

व्याकरण उत्पन्न हो गया क्योंकि शब्दों की कुंजी उत्पन्न हो गयी। **शब्दों की कुंजी कहाँ रहती है? शब्दों की कुंजी जहाँ प्राण का अन्तिम सूत्र है, अपान का प्रारम्भ सूत्र है वहाँ व्याकरण शब्दों की कुंजी कहलाती है।**

आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेषता में नहीं जाऊंगा। केवल विचार विनिमय देने के लिए आया हूं। कि ऋषि मुनियों ने कितना परिश्रम किया, कितना अन्तर्ध्वनि को जानने का प्रयास किया है? वे अन्तर्ध्वनि को और जानने लगे। जहाँ अग्रतम् जहाँ व्यान प्राण और समान प्राण दोनों का मिलान होता है, दोनों की स्वर ध्वनियां होती हैं तो ध्वनि को, श्रोत इन्द्रियों को शान्त करके उस ध्वनि को श्रवण करने लगे। तो वहाँ आदान प्रदान हो रहा था वह जो आदान प्रदान की ध्वनि थी वह बाह्य जगत मे आदान प्रदान को प्रतिभासित करती रहती है।

यहाँ जो व्यान प्राण है जिसे हम व्यान कहते हैं, वह रूद्राणीगत कहलाता है, वह रसों का आदान प्रदान करता है, सामान्यता को प्रदान करता है। वह जो उदान बना हुआ है। उदान प्राण ही सर्वत्र ध्वनि को ले करके, चित्त के मण्डल को, आत्मचित्त के मण्डल को, आत्मतत्व को ले करके बाह्य को अब्रताम् इस शरीर से बाह्य हो जाता है।

परिणाम क्या? आज हम श्रोतों में इस ध्वनि को जानने का प्रयास करें। यह जो हम श्रवण करते हैं इसी से हम दैत्य बनते हैं, इसी ध्वनि से देवता बनते हैं, इसी से हम ऋषि बनते हैं। इसी ध्वनि को पान करके हम व्याकरण के पाण्डित्य को जानते हैं।

विचार–विनिमय क्या? हमें विचारना है महात्मा धुन्धु ऋषि से आचार्यों ने यह प्रश्न किया था कि महाराज! श्रोतों में क्या विज्ञान है? तो उन्होंने कहा, हे ऋषियों! अनहद्–ध्वनि को श्रवण करना है। इसको अनहद कहते हैं इस शब्द को अनाहत कहते हैं। प्रति ध्वनि आती है, वह अनहद कहते हैं, योगीजन जिसको पान करते हुये सर्वत्र ध्वनि को अपने अन्तर्जगत में दृष्टिपात करते हैं जैसे बाह्य जगत् में मानव पान करता रहता है। बाह्य जगत को सर्व बह्माण्ड को अपने को ही क्या बाह्रा में दृष्टिपात करता है और दृष्टिपात करता हुआ दूर चला जाता है।

जैसे मैंने बेटा! पूर्वकाल में नेत्रों के सन्म्बन्ध में कहा है। नेत्रों की इतनी सूक्ष्म दृष्टि बन जाती है कि तरंगों को दृष्टिपात करने लगता है। मैंने एक वाक्य तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा था। तुम्हें स्मरण होगा कि हमारे यहाँ एक उद्दालक गोत्र हुआ है। उद्दालक गोत्र में एक महर्षि सोमभानु ऋषि हुये हैं। सोमभानु ऋषि एक समय शान्त मुद्रा में विद्यमान हुये। उनकी पत्नी बोली कि महाराज! आप कैसे शान्त हैं? उन्होंने कहा, देवी! मैं ऐसा दृष्टिपात कर रहा हूं कि मैं कुछ अन्तरिक्ष से जानना चाहता हूं। उन्होंने कहा, महाराज! कैसे जानोगे कि हम योगी बनें? दोनों पति पत्नी भयंकर वनों में पहुंच गये और उन्होंने वहाँ याग करना आरम्भ किया। जब वह याग करने लगे, याग करते करते जो याग में से सुगन्धि होती, परमाणु उत्पन्न होते, याग करते–करते जो याग में से सुगन्धि होती, परमाणु उत्पन्न होते अथवा परमाणुओं के साथ में ध्वनि को वहे कृतिभाः चित्रकेतु यन्त्र का उन्होंने निर्माण किया और उस निर्माण में उसमें उस शब्द, उस प्रतिध्वनि याग की उसमें परिणत करने लगे, उनका आदान प्रदान होने लगा। परमाणु सुगठित होने लगे। कहीं त्रिमुखी बनने लगे, कहीं चतुमुखी, पंचमुखी बनने लगे। उन्हीं परमाणुओं में जैसा उन्हें, उनकी दिव्य दृष्टि बन गयी। वे नेत्रों से उन्हीं को दृष्टिपात करते रहते। जब उन्हें बारह वर्ष हो गये, दोनों पत्नी–पत्नी "ब्रह्म चरिष्यामि बारह वर्ष हो गये इसी प्रकार दृष्टिपात करते–करते।

परिणाम यह हुआ कि उस यन्त्र में, उन परमाणुओं में, उस ध्वनि में उन्हें कुछ चित्र दृष्टिपात आने लगे। जब उन्हें कुछ चित्र दृष्टिपात आने लगे तो आन्तरिक जगत् के याग को करने लगे। तो परिणाम यह हुआ कि श्वास की गति थी, उन श्वासों में उनको रजोगुण, तमोगुण प्राप्त होने लगा। जब रजोगुण, तमोगुण प्राप्त होने लगा तो रजोगुण, तमोगुण के प्राप्त होते ही उनके चित्र उन्हें, चित्रावली उन्हें यन्त्र में दृष्टिपात आने लगी। उनकी दिव्य दृष्टि ऐसी बनी कि जो तंरगों में तंरगें गति कर रही थीं, प्रतिध्वनि के साथ में, उन्हें अपने पचासवें जो महापिता थे उनके दिग्दर्शन होने लगे। उन्होंने और अनुसन्धान किया और यन्त्रों को जाना और अग्नि की प्रतिभाओं को जाना, परिणाम यह हुआ कि उन्हें अपने सौवें महापिता के दर्शन होने लगे। प्रतिध्वनि के साथ जो चित्र गति कर हा है अन्तरिक्ष में, जो चित्र अन्तरिक्ष में विराजमान है। उन्होंने जो चित्र के साथ, ध्वनि के साथ में चित्र है, चित्रों के साथ में आकार बना हुआ है, वह यन्त्रों में उन्हें दृष्टिपात आने लगा। परिणाम यह हुआ कि वे अपने महापिताओं के दर्शन करने लगे, श्रवण शक्ति के द्वारा। मानव श्रवण करता ही रहता है, वह आन्तरिक–जगत् में प्रवेश कर जाता है। तो याग कर्म के साथ में चित्रावली, प्रतिध्वनि के साथ में चित्र जाते हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, आदि ब्रह्मा ने इस प्रकार का अपना क्रिया–कलाप बनाया तो उन्होंने विचारा कि कल्प आदि में जब यह कहा जाता है– "पूर्वों कल्प्यतम"। जब पूर्वकाल के आधार पर यह ब्रह्माण्ड रचा है तो पूर्वकल्प में जो कोई ऋषि हुआ होगा या उसने व्याकरण को जाना होगा, इस ध्वनि को जाना होगा। आज मैं उस आन्तरिक–जगत् में दृष्टिपात करना चाहता हूँ। वेद का ऋषि यह विचारता रहता। ब्रह्मा जी ने यह विचारा कि वह जो प्रतिध्वनि आती थी, वह ध्वनि चित्रों में आती रही और वे जो बाह्य–जगत् में ,एक बाह्य चित्त और आन्तरिक चित्त दोनों का मिलान, दोनों की प्रतिध्वनि को एक सूत्र में लाये और एक माला के मनके बना करके पूर्व कल्प में जब किसी काल में प्यारे! पूर्व सृष्टि के काल में जब कोई ऋषि हुआ, उन ऋषियों का उसका चित्र उन्हें उस प्रतिध्वनि में आने लगा।

जब प्रतिध्वनि में आया तो उन्होंने व्याकरण की पुष्टि करते हुये शब्दों की प्रतिभा, शब्दों की कुंजी इस बाह्य और आन्तरिक चित्त में, जो ध्वनि हो रही है इस मानव शरीर में, जो ध्वनि पर प्रतिध्वनि हो रही है उस ध्वनि को जानने वाला बेटा! मानव के शब्दों को जानता है। मेरे गुरु ही नहीं, वेद के आचार्य तो यहाँ तक कहते हैं कि जो शब्द उच्चारण कर रहा है वह भी शब्द उसकी प्रतिध्वनि में आ रहा है। मानव दिव्य ध्वनि कर रहा है। वह अपनी ध्वनि में क्या विचार प्रकट कर रहा है, वह उसकी प्रतिध्वनि में आ रहा है। रेंगने वाले जितने भी प्राणी हैं उन प्राणियों की प्रतिध्वनि जो आ रही है, उनको वह ऋषि आन्तरिक जगत वाला, शब्दों को, ध्वनि को ग्रहण करने वाला सर्व प्राणियों की ध्वनि को जानता है, वह सर्वध्वनि को जानने लगता है।

परिणाम क्या? यह प्राणी क्या कह रहा है? यह प्राणी कितना दयालु है? यह प्राणी कितना हिंसक बना हुआ है? यह सब उसके अन्तःकरण में, वे चित्तमण्डल में विराजमान हो जाते हैं। मेरे प्यारे! यह विचार तो बहुत गम्भीर बन गया है, यह विचार तो पूर्ण रूपेण योगियों का विचार है। आज मैं इस सन्म्बन्ध में केवल इतना ही उच्चारण के लिये आया हूं कि हे मानव! तू इन श्रोतों से अशुद्ध शब्द को ग्रहण न कर। हे मानव! तू अपनी मानवता को ऊंचा

बनना है। मानवता को योगेश्वरी बनाना है। तो इन शब्दों में मानव तू यथार्थ शब्दों को ग्रहणा करने वाला बन। तू ऋत और सत् को जान क्योंकि ऋत और सत् को ही प्रभु की प्रतिभागी कहा है।

मेरे प्यारे! विचार इतना ही उच्चारण करता हूं कि आज हम अपने मानव जीवन की प्रतिध्वनियों पर विचार विनिमय करने वाले हों। यह जो विचार की पवित्र ध्वनि है, यह मानव को कहाँ ले गयी, यह कैसा आत्म लोक बना हुआ है। यह कसी प्रतिध्वनि आ रही है। आत्मा के कारण से प्राण ध्वनि कर रहे हैं। आत्मा के कारण ही मन विभक्त हो रहा है। यह कैसी पवित्र ध्वनि है? यह कैसी ध्वनि को पान करता हुआ ऋषि सर्वत्र निष्ठावादी बन जाता है।

मैं आज कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूं। विचार यह देने के लिए आया हूं कि हमारे श्रोतों में पवित्र ध्वनि होनी चाहिये। यह हमारे श्रोतों का विज्ञान है। यह बाह्य विज्ञान , आन्तरिक विज्ञान दोनों प्रकार के विज्ञान की गाथा गा रहा हैं कैसी प्रिय गाथा गा रहा है। यह आत्मा प्रतिध्वनि कर रही है। चित्त इसी के कारण ध्वनि रहा है। वह जो गाथा है वही मानव को ऊंचा बना देती है। यह गाथा ही मानव को पवित्र और महान बना देती है।

आओ, मेरे प्यारे! मैं अपने विचारों को दूर न ले जाऊँ, मैं गम्भीरता में न ले जाऊँ। विचार विनिमय क्या? कि हम सदैव अपने श्रोतों के द्वारा इस आवागमन के संस्कार हमारे न बनें, ऐसे शब्दों के ग्रहण करें। चित्त में ये शब्द विद्यमान होते हैं, उन्हें से प्रति ध्वनियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इसी का सम्बंध बाह्य जगत में दिशाओं से होता है। जैसा हमने कल के वाक्यों में कहा था कि विद्युत की जो तरंगें हैं, ये उत्तरायण से दक्षिणायन को गति करती है। उसी प्रकार मानव के श्रोतों में जो शब्द आता है, वह भी दक्षिणायन से उत्तरायण को चलता है। उत्तरायण कहते हैं, प्रकाश को, दक्षिणायन कहते हैं, अन्धकार को। यह दक्षिणायन से प्रकाश चलता है। अन्धकार समाप्त हो करके प्रकाश को प्राप्त होता है।

परिणाम? मेरे पुत्रों! देखो, दक्षिणायन और उत्तरायण। उत्तरायण से दक्षिणायन अर्थात् अन्धकार में जाने के पश्चात प्रकाश विद्यमान हो जाता है। एक स्थली बन जाती है। उसको कोई नहीं जानता। उसको योगी ही जानता है। उस मानव के जीवन में दक्षिणायन नहीं आता। दक्षिणायन उनके जीवन आता है जो अज्ञान में है वे उत्तरायण को जाना चाहते हैं, उत्तरायण प्रकाश को कहते हैं इसलिए प्रत्येक मानव को प्रकाश में रमण करना चाहिये और प्रकाश की प्रति ध्वनि को जानना चाहिये।

उस ध्वनि को भी विचारों जो लोकों में, एक दूसरे लोक की जो परिक्रमा हो रही है, वह भी तो कोई ध्वनि है। वह भी ध्वनि है उस ध्वनि के कारण जैसे शब्द एक दूसरे से पृथक रहता है इसी प्रकार एक लोक दूसरे से पृथक रहता है। एक मानव मार्ग में जा रहा है। वह मार्ग में एक दूसरे की परिक्रमा कर रहा है। प्रतिभासित बन रहा है। वह मार्ग में एक दूसरे की परिक्रमा कर रहा है, प्रतिभासित बन रहा है। इसी प्रकार प्रत्येक शब्द, प्रत्येक ध्वनि इसका मानव के जीवन में एक महत्ता, एक पवित्रता आती हुई हमें संसार सागर से जो नाना प्रकार के मानव वाला जगत है, यहाँ किसी का मान होता है तो किसी का अपमान होता है दोनों ही हमें उस प्रति ध्वनि तक नहीं जाने देते। हमें दोनों को त्यागना है।

आओ मेरे पुत्रों ! आज का विचार विनिमय क्या कह रहा है? हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुये एक महाभारत का काल जो शब्दों के कारण भयंकर राष्ट्रो मे अग्नि प्रदीप्त हो जाती है एक वह काल है जो शब्दो के कारण मानव देव प्रवृति बन रहा है, अशुद्धता को त्याग रहा है एक प्रतिध्वनि यह है जिससे मानव शब्दों को जान करके व्याकरण की उत्पत्ति, शब्दों की कुँजी का निर्माण कर रहा है। यह सब श्रवण शक्ति है। इन्हीं के द्वारा शब्द आते हैं और शब्दों को ग्रहण करना अनहद को अपने में धारण करने का नाम योगेश्वर बनना है।

यह आज का वाक्य अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। मुझे समय मिलेगा, मैं आगे की चर्चाएं कल प्रकट करूँगा। यह आत्म लोक कैसा लोक है? आत्मा के लोक में हम कैसे पहुंचेंगे? कल बेटा! मैं तुम्हें आत्मा के लोक में पहुंचाने का प्रयास करूँगा।

आज का विचार विनियम क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुये, देव की महिमा का गुणगान करते हुये इस संसार सागर से पार हो जाये। यह है बेटा! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात यह वार्ता समाप्त हो जायेगी। वेद–पाठ। **रघुनाथ मंदिर,अमृतसर**

४. चतुर्थ अध्याय–आध्यात्मवेता बनने में जीवन की सार्थकता है 05–07–1978

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद–वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि उसका गुणवादन करना ही मानव का कर्तव्य माना गया है। परन्तु गुणवादन करने के नाना प्रकार के विचार प्रायः हमारे मस्तिष्कों मे आते रहते हैं और यह विचारते रहते है कि हमें परमपिता परमात्मा का गुणवादन किन रूपों में वर्णन करना चाहिये अथवा कौन सा हमारा मार्ग होना चाहिये। जिस मार्ग को अपनाने के पश्चात मानव के जीवन में एक महत्ता और आत्मीयता प्रदान होने लगे।

जब हम विचार–विनिमय करना प्रारम्भ करते हैं कि हमारे मानव की जो प्रति–अन्तर्ध्वनि है, परमात्मा के गुण–वादन करने का जो संकल्प है, वह सकंल्प हमारा क्या होना चाहिए? क्योंकि जब परमपिता परमात्मा को हम सर्वत्र स्वीकार करते है, वेद का एक–एक शब्द उस परमात्मा को व्यापक स्वीकार कर रहा है। हमारे ऋषि–मुनियों की परम्परा में जब विचार–धाराएँ प्राप्त होती रहीं, तो एक–एक वेद–मन्त्र को लेकर उन्होंने बहुत अनुसन्धान किया क्योंकि नाना ऋषि, कुछ ब्रह्म–वेत्ता हुये उन्हीं ऋषियों में कुछ मन्त्र–दृष्टा हुये। कुछ वेद–दृष्टा हुये हैं, उनमें भिन्न–भिन्न प्रकार के भेद है।

आज पुत्रों! मै तुम्हें उन भेदों में ले जाना नहीं चाहता हूँ। जैसे वेदों की पवित्र ध्वनि है, कई प्रकार से उसका वादन होता है। कई प्रकार की उसकी ध्वनियाँ, कई प्रकार के उसके स्वर होते है। जैसेः– उदात्त, अनुदात्त,जटा, धन, माला आदि और भी नाना प्रकार के भेद माने गये है।

केवल विचार–विनिमय यह कि हमारा वेद–मन्त्र हमें कौन सा पथ दर्शन करा रहा था। हम उस पथ को अपनाना चाहतें है, जिस पथ को अपनाने के पश्चात मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है। नाना प्रकार की विचार–धाराएँ, मानवीय मस्तिष्कों में परम्परा से रही हैं और रहती रहेंगी क्योंकि यह तो विवाद एक अनुवादन है। परमात्मा की आशामयी विद्या का अन्त तो नहीं हो जाता, वह तो सदैव नवीन बनी रहती है। परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान में वृद्धपन भी नहीं आता, सदैव उसमें नवीनता रहती है क्योंकि ज्ञान सदैव नवीन रहता है। विज्ञान सदैव नवीनता को प्राप्त होता रहता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज में तुम्हें एक ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जिस क्षेत्र में मानवता और उस ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों की कल्पना की जाती है अथवा दोनों को एक स्वरूप में लाया जाता है। इससे पूर्व काल में हम तुम्हें यह वर्णन करा रहो थे कि परमात्मा वैज्ञानिक है। वह परमपिता परमात्मा ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला है। प्रकृति के एक–एक कण में वह व्याप रहा है क्योंकि बिना चेतना के ब्रह्माण्ड गतिशील नहीं होता। नाना प्रकार की आभा में गति करने वाला यह ब्रह्माण्ड है।

हमारे ऋषि–मुनियों ने बेटा! एक–एक वेद–मंत्र को लेकर के बहुत अनुसन्धान किया है। मानवीय जीवन के संबंध में मानव दर्शन को उन्होंने एक आभा में लाने का प्रयास किया और यह कहा कि जो मानव परमात्मा के समीप जाना चाहता है, परमापिता परमात्मा के समीप जो भी मानव जाना चाहता है वह अपनी मानवता को मानव दर्शन को प्रथम दृष्टिपात करता रहे । उसके पश्चात परमपिता परमात्मा का उसे दिग्दर्शन हो जाता है।

आज मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। इससे पूर्वकाल में हम श्रोत्रों की चर्चा कर रहे थे, ध्वनि की चर्चा कर रहे थे, चित्त मण्डल की चर्चाएं कर रहे थे कि हमारा आन्तरिक–चित्त और बाह्य–चित्त दोनों का जब मिलान होता है, तो बाह्य और आन्तरिक दोनों एक सूत्र में आ जाते हैं, उन दोनों के प्रति धारा बन जाती है, उस धारा को अपनाने वाला मानव श्रोत्रों के विज्ञान को जानता है। वह आन्तरिक चित्त और बाह्य चित्त दोनों को जानता है क्योंकि चित्त में ही मानव की धारणा बनती है। आन्तरिक चित्त की चित्त में मुख्य धारणा, आभा में परिणत हो जाती है।

आज का वेद का ऋषि जहाँ ध्वनि की चर्चा कर रहा है वहीं नाभि की चर्चा भी कर रहा है। बेटा! ''नाभ्याम् नाभ्याम् मृत्रुति देवः।'' वाक्य कहता है कि वह जो नाभि है, यह इस ब्रह्माण्ड का केन्द्र माना गया है। नाभि किसे कहते है? नाना प्रकार की सूर्य की किरणें हैं और वे जैसे रथ में अरे लगे रहते हैं, एक चक्र बन जाता है। इसी प्रकार इस सूर्य में से नाना प्रकार की किरणें चलती हैं और वे किरणें पृथ्वी–मण्डल पर आती हैं। कोई चन्द्रमा में चली जाती हें, कोई मंङ्गल को प्रकाश दे रही है, कोई बुध को प्रकाश दे रही है। नाना पृथ्वियाँ इस नाभि के प्रकाश को प्राप्त हो रही हैं। इसी प्रकार मानव के शरीर में एक नाभि है। उसे 'नाभ्याम्' कहते हैं।

यह जो नाभि है, वह इस मानव शरीर का केन्द्र कहलाती है। वह नाभि ही जब मानव, जब योगेश्वर साधना के क्षेत्र में जाता है और प्राण को एकाग्र करना चाहता है तो 'मूलाधार' में जाता है और मूलाधार के पश्चात वह नाभि के केन्द्र में आता है। नाभि ही एह एकाकी रूपेण कहलायी जाती है। जैसे यह परमात्मा का अमूल्य जगत् है इनमें नाना अरे लगे हुए है, यह गति कर रहा है। जिस प्रकार वेद रूपी ऋचाएँ हैं, और वे वेद–रूपी ऋचाएँ एक सूत्र में पिरोयी हुई हैं। जैसे नाभि में अरे लगे रहते हैं, इसी प्रकार वह ''अप्रतम् दित्याम् लोकाः'' नाभि में भी इसी प्रकार अरे लगे रहते हें। क्योंकि वेद एक ज्योति है, वेद एक प्रकाश है। वेद पोथी नहीं है, वेद प्रकाश को कहते है वह एक सूत्र में पिरोया हुआ है। वह सूत्र, वह नाभि है। ''नाभ्याम्'' उसे कहते है, क्योंकि परमात्मा का जो इस ब्रह्माण्ड को जो नाभ्याम है वह चेतना है । इसी प्रकार मानव के शरीर में एक नाभि है और नाभि ही केन्द्रित हो जाती है।

मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा! महर्षि प्रवाहण ऋषि आश्रम मे एक सभा हुई थी उस सभा मे महर्षि शिलक और दालभ्य, महर्षि रेवक, शाण्डिल्य और महर्षि मुद्गल, महर्षि जमदग्नि, महर्षि सुकेता, ब्रह्माचारी कवन्धि, यज्ञकेतु, ब्रह्मचारी यज्ञत्तत्व, महर्षि पनपेतु, विभाण्डक आदि ऋषियों का एक समूह था जिसमें महर्षि दधीचि भी विद्यमान थे। वहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होने लगा। दालभ्य, शिलक, प्रवहाण ये तीनों ऋषि एक पंक्ति में विद्यमान हैं और एक पंक्ति में महर्षि अङ्गिरस और ब्रह्मचारी कवन्धि और भी नाना ऋषि हैं। जब यह प्रश्न उत्पन्न होने लगा कि इस पृथ्वी की नाभि क्या है? पृथ्वी की नाभि के ऊपर प्रश्न आ गया।

मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा कि पृथ्वी की नाभि शकुन्तका है। विचार आया शकुन्तका क्या है? यह वेदमंत्र का एक शब्द, एक आख्यायिका है। शकुन्तका कहते हैं पृथ्वी के मध्य को, शकुन्तका कहते है यज्ञवेदी को, शकुन्तका लक्ष्मी को भी कहते हैं, परन्तु नाना पर्यायवाची शब्द है , और शकुन्तका नाम प्रकृति को भी कहते है । तो वेद में बहुत से पर्यायवाची शब्द आते हैं परन्तु यहाँ यह विचार आया कि शकुन्तका नाम यज्ञवेदी का है, जिस यज्ञवेदी पर यज्ञमान विद्यमान हो करके याग करता है और उसमें स्वाहा देता है तो होता जन भी स्वाहा देते है। अध्वर्यु, उद्गाता इत्यादि यज्ञवेदी के समीप विद्यमान हो करके साकल्य की आहुति देते हैं। इसी प्रकार यह सप्त होता है जो शकुन्तका को सजातीय बनाते हैं, नाभि को ऊँचा बनाते हैं। नाभि यज्ञवेदी को कहा गया है। परन्तु देखो, विचार आता है कि यज्ञवेदी नाम शकुन्तका का है जो एक यज्ञमान का विमान बन करके द्यु–लोक मे चला जाता है। वह इस प्रकार की आभा बन करके अन्तरिक्ष में गति करने लगती है।

मुनिवरो! देखो, यहाँ वेद का ऋषि कहता है, मंत्र यह कहता है कि इस पृथ्वी की जो नाभि है वह यज्ञवेदी है। जैसे यज्ञवेदी पृथ्वी की नाभि है इसी प्रकार मानव के शरीर में ये नाभिका, इस मानव शरीर की यज्ञवेदी है। इस शरीर में पञ्च–तत्व होता है वे होता साकल्य ला–ला करके नाभि को परिणत करते हैं, यह कहते हैं कि हे नाभि! तू हमारा केन्द्र है, तू शकुन्तका है। नाना साकल्य होते हैं और नाभि के द्वार पर वे स्थिर हो जाते हैं। जैसे नाना प्रकार अरे लगे रहते हैं और वह चक्र बन जाता है। इसी प्रकार सूर्य से नाना प्रकार की किरणें आती हैं। कोई पृथ्वी से, सूर्य को उर्ध्वा में गमन करती हैं, कोई मङ्गल से गमन करती जाती है, कोई चन्द्रमा से जाती है परन्तु वह एक स्थिति है, एक नाभि में से नाना प्रकार की किरणें चलती हैं।

इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में एक नाभि केन्द्र है। उस नाभि में से नाना प्रकार की धाराएँ चला करती हैं। इस पृथ्वी से इनका सन्म्बन्ध होता है। इसमें नाना प्रकार की नाड़ियाँ हैं और वे जो नाड़ियां हैं, एक यन्त्र लगा हुआ है इस नाभि केन्द्र में। जो यन्त्र नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण करता है और वह निर्माण किससे करता है? वह जो स्वाहा होता है, वह जो नाना प्रकार के साकल्य को ला–ला करके नाभि को, यज्ञवेदी को अर्पित कर देते हैं, यज्ञ वेदी में स्वाहा कर देते हैं शकुन्तका को।

मुनिवरो! देखो, उसमें जो तङ्गें आती हैं, उसमें जो द्रव्य जाता है, साकल्य जाता है, वह यन्त्र उसी में से नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण करता है। धातुओं का निर्माण हो करके नाना जो नस–नाड़ियां हैं इस शरीर में, सामान्य–प्राण के द्वारा उनको प्रदान की जाती है। नाना प्रकार की नस–नाड़ियों में वह धातु, वह साकल्य उनमें परिणत किया जाता है, उनमें पिरोया जाता है। अपने–अपने भाग को ले करके श्रोत्र शब्दों के प्रतिनिधि बन जाते है। चक्षु दृष्टि के रूप में प्रतिनिधि बन जाते हैं और त्वचा स्पर्श की प्रतिनिधि बन जाती है और वाणी शब्दों की प्रतिनिधि बन जाती है, घ्राणेन्द्रियाँ मंद–सुगंध की प्रतिनिधि बन जाती हैं।

मेरे पुत्रों! वह जो नाभि–केन्द्र है, उस नाभि में नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण होता है। संसार की नाभि पृथ्वी मानी जाती है। इस पृथ्वी के गर्भ में, इस प्रकार वैज्ञानिक जनो ने कहा है कि नाना प्रकार धातुओं का निर्माण होता है। इसी प्रकार इस मानव की नाभि का सन्म्बन्ध भी पृथ्वी से होता है। यह जो पृथ्वी से रहता है। ऐसे ही मानव के शरीर मे नाना प्रकार का जो खनिज इससे उत्पन्न होता है, जो मानव शरीर को सजातीय बना देता है।

मुझें कुछ ऐसा स्मरण आता रहा है कि पृथ्वी के गर्भ में जैसे शिव धातु की उत्पत्ति होती है, पार्वती धातु की उत्पत्ति होती है, हमारे यहाँ शिव और पार्वती को, दोनों का मिलान हो करके ऊँचे–ऊँचे वैज्ञानिक वाहनों का निर्माण करते हैं। मुझे दृष्टिपात आ रहा है, मुझे स्मरण आता है, महर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज ने एक यन्त्र का निर्माण किया था और जब यन्त्र का निर्माण किया तो उन्होंने इस पृथ्वी में से नाभि के द्वारा, क्योंकि विचार यह आता है विचारने से , चिन्तन करने से यह प्रतीत होता है कि जो धातु इस पृथ्वी के गर्भ में है जो साकल्य है, पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खनिज हैं, उस खनिज की तरङ्गें मानव शरीर में निश्चित हैं। यदि नहीं होंगी तो पृथ्वी के खनिज को मानव जान ही नहीं सकता है। उसको जानने की क्षमता आ ही नहीं सकती क्योंकि सर्वत्र इस मानव शरीर में विद्यमान है और इस नाभि केन्द्र में वहाँ पिपाद रहता है और उसको सर्वत्र नस–नाड़ियों में जब पिरोया जाता है, मानव जिस वस्तु का चिन्तन करना प्रारम्भ करता है वही वस्तु उसके समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है, उसी के ऊपर वह अनुसन्धान प्रारम्भ कर देता है। उसी में अनुसंधानित होता हुआ नाना प्रकार के धातु–पिपाद को जानने लगता है।

मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण है शिव और पार्वती को, दोनों को ऋषि ने जान करके एक वाहन का निर्माण किया था। बिना जलाशय के वाहन में विद्यमान हो करके लोकों की यात्रा करता रहा है। नाना ऋषियों ने, नाना लोक–लोकातंरों में जाने वाले यान–यन्त्रों का निर्माण किया। यह आज नहीं पुरातन काल में ऐसा होता रहा है। जो नाभि के चक्र को जानता है, वह सर्व वाहनों को जानने वाला है, सर्व धातुओं को जान लेता है, सर्वत्र खनिजों को जान लेता है। वह खनिज इस वायुमण्डल में, परमाणुओं में गति करता है। इस पृथ्वी के गर्भ में, जल रूप में गति करता रहता है। जो कि अग्नि–प्रचण्ड होती है और वह अग्नि सूर्य की किरणों का मिलान हो करके, वह परिपक्व बनती रहती हैं। उसका पिपाद बनता रहता है, निर्माण होता रहता है और वही धातु वाहनों में कार्य में आती है। वही धातु राष्ट्र की सम्पदा बन करके इस पृथ्वी के आंगन में प्रवेश कर जाती हैं।

परिणाम क्या? वेद का ऋषि और साधक कहता है 'नाभ्याम्' हे नाभि! यह जो मानव के शरीर में नाभि है, यह नाभि कहते हैं केन्द्र को, जो मध्य भाग में होता है, मध्य भाग को कहते हैं। इसी प्रकार जैसे यज्ञवेदी पृथ्वी पर विद्यमान हो करके यह दर्शाती है कि में केन्द हूँ। इसी प्रकार पृथ्वी यह दर्शाती है कि मैं केन्द्र हूँ। मुनिवरो! देखो, इस सूर्य की जो आभा है वह यह दर्शाती है कि में नाभि हूँ, मैं नाभि में केन्द्र हूँ। मेरे केन्द्र से नाना प्रकार की किरणें चलती हैं। सूर्य में अमृत को देती हैं। पृथ्वी के गर्भ में जाती हैं तो धातु–पिपाद का निर्माण और खनिज का निर्माण करती हैं। मङ्गल में जाती हैं तो वहाँ पार्थिव–त्तत्व को तपाती रहती है। बुध में जाती है तो वहाँ प्राणी–मात्र का निर्माण होता रहता है।

परिणाम क्या? मुनिवरो! नाना प्रकार के लोक–लोकांतरों में मेंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, ऋषि–मुनियों का यह कथन है कि यह जो सूर्य है, इस सूर्य के आंगन में तीस लाख पृथ्वियाँ भ्रमण करती रहती हें, गति करती हैं, परिक्रमा करती रहती हैं। इसी प्रकार जैसे मानव शरीर से जैसे नाभि केन्द्र से जब प्राण अग्रणीय बनता है और प्राण जब हृदय केन्द्र में आ जाता है तो हृदय को गति दे देता है और हृदय की गति से ही मानव का शरीर जीवित रहता है, श्रृङ्खलाबद्ध रहता है और वही हृदय को जानने वाले ऋषि नाना प्रकार की आभा को जानते हैं।

मुझे स्मरण है पुत्रों! हमारे यहाँ अश्विनी कुमार दो वैद्यराज हुये हैं, जो महात्मा भुन्जु मुनि महाराज के पुत्र कहलाते थे। जब वे अनुसन्धान करते थे तो नाभि केन्द्र का अनुसन्धान करने के पश्चात वे हृदय के ऊपर चिन्तन प्रारम्भ करने लगे। हृदय की गति को महान बनाना चाहते हो तो नाभि को प्रथम जानो। नाभि को जानने वाला हृदय की गति को विशाल बनाता है। हृदय को ऊँचा बना लेता है। नाभि केन्द्र से ही नाना प्रकार की धातुओं की तरङ्गें कछ उपस्थ के द्वारा जाती हैं। जो चन्द्रमा रसों का स्वादन करता है, वे चन्द्रमा के रसों में परिणत हो जाती है। मेरे पुत्रो! वह जो एक आभा है, एक विचित्रता है, जो नाभि केन्द्र से नाना तरङ्गे, जैसे मानव का शब्द चलता है और शब्द चलता है, तो वह शब्द गति करता है पृथ्वी की, उसमें नाना परमाणु होते हैं। एक परमाणु विशेष होता है, उस परमाणु के अन्तर्गत अरबों परमाणु होते हैं। एक सूक्ष्म होता है, एक ध्रवु होता है, वह उतनें ही आकार में गति करता है, जितने आकार का वह शब्द है और शब्द के साथ में मानव का चित्र है। वह उतने ही आकार में परमाणु एक–दूसरे की परिक्रमा करते हैं और उतने ही आकार का बन करके अन्तरिक्ष को प्राप्त हो जाते हैं।

इसी प्रकार नाभि के केन्द्र से कुछ तरङ्गें चलती हैं, उन तंरगों का सन्म्बन्ध हृदय से होता है और हृदय से जब मानव एक आर्शीवाद देता है। जब आचार्य के समीप, जब गुरु के समीप ब्रह्मचारी प्रवेश करता है तो गुरु कहता है कि में इसे अपने गर्भ में धारण करूँगा। तीन रात्रि वह अपने गर्भ में धारण करता है तो आचार्य का गर्भ क्या है? पुत्रों! आचार्य का जो गर्भाशय है वह नाभि है और नाभि क्या है? नाभि वैदिक साहित्य में व्यापकता को कहते हैं, वह चक्र को कहते है। जैसे यह ब्रह्माण्ड का चक्र बना हुआ है, ऐसे ही इस नाभि का चक्र बनता है और वहाँ प्राण की डुगडुगी लगती है। नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण होता है। वह धातु पिपाद पृथ्वी में जैसे निर्माण होता है ऐसे ही नाभि में निर्माण होता है।

उस पिपाद को जानने वाला वह जो 'नाभ्याम्' शब्द है, उसका प्रतिनिधित्व करने वाला है। जब हृदय–स्थली की तंरगें चलती हैं, उनको भी एक आचार्य उन्हें गर्भ में धारण करके आशीर्वाद देता है, "स्वस्ति" कहता है तो वे नाभि के केन्द्र से उद्‌गार चलते हैं। उद्‌गार ऊर्ध्वागति में, नाभि केन्द्र में परिणत हो करके कण्ठ के द्वार से वह बाह्म–जगत् को धारण करता है। उनमें वह सौन्दर्य आशीर्वाद होता है। जहाँ नाभि केन्द्र को जानने वाला मानव वर्तमान को जानता है। नाभि केन्द्र को जानने वाला मेरे प्यारे, चित्त को जागरूक कर देता है। चित्त में जो जन्म–जन्मातंरों के संस्कार विद्यमान होते हैं वे सर्वत्र उसको उद्‌बुद्ध हो जाते हैं।

नाना प्रकार के उदाहरण मुझे स्मरण है । बेटा एक समय गर्न्धव लोक मे पंहुचे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गन्धर्व लोक मे चले गये। वहां पांच ऋषि विद्यमान थे । और वह पांच ऋषि कौन कश्यप, विभाण्डक, कुलकेतवत ऋषि महाराज, शकुन्तिकान्त और सोमकेतु यह पांच ऋषि विद्यमान थे । परन्तु यह ऋषि यह अभ्यास कर रहे थे । यह नाभि का अभ्यास कर रहे थे । और यह जान रहे थे कि नाभि केन्द्र को जानने से उन्होने एक वाक्य वेदो मे आख्यिाकाए श्रवण की नाभ्याम चित्रम ब्रीही व्रतयाम जन्म ग्रीती क्रता वेद की आख्यिकाएँ स्मरण आ गयी। और वेद की आख्यिकाएँ यह कह रही थी कि क्या इसका अनुसन्धान करने से नाभि द्वारा मानव के चित की जागरूकता हो जाती है जो मानव का आन्तरिक चित है उस चित मे जो संस्कार है अंकुर रूपो मे विद्यमान है वे सौ जन्म के क्या लांखो जन्मो के संस्कार को जागरूक करी लेता है । मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब उनके द्वार पर पंहुचे तो शकुन्तिकान्त ऋषि महाराज से कहा कि महाराज ? तो उस समय महात्मा कश्यप कहते हैं कि हम अपने संस्कारों को जागरूक कर रहे हैं, हम उनका दृष्टिपात करना चाहेत हैं। कौन सा संस्कार किस प्रतिध्वनि पर आएगा? किस कर्म के करने से आयेगा और कैसे वह सूक्ष्म बन सकता है? यह अभ्यास करना चाहते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आश्चर्यचकित हो गए और महर्षि कश्यप ने यही कहा कि आओ महाराज! विराजो! वे विराजमान हो गए।

वे अभ्यास कर रहे थे नाभि केन्द्र का, क्योंकि मूलाधार से जब प्राण, मन दोनों गति करते हैं और नाभि केन्द्र में जब प्रवेश करते हें तो उनके चित्त जागरूक हो जाते हैं। जैसे वृद्धावस्था में जब कोई बाल्यकाल के क्रियाकलाप को जिन्हें निश्चित कर देता है, उन्हें स्मरण कर देता हे तो बाल्यकाल के संस्कार मानव के उद्‌बुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार वह अपने प्राणों की डुगडुगी से, मन की आभा से, क्योंकि प्रकृति का एक सूक्ष्म तंतु माना गया है। उस सूक्ष्म तंतु में प्रकृति का सर्वत्र विज्ञान विद्यमान रहता है। इसी प्रकार जो मानव नाभि केन्द्र को जागरूक करने वाला होता है वह चित्त के संस्कारों को उद्‌बुद्ध करके लाखों करोड़ों जन्मों के संस्कार उस मानव के समीप आ जाते हैं किस जन्म में तूने कौन सा क्रियाकलाप किया था, कौन सा अध्ययन किया था? अध्ययन करने की शैली उसके समीप आ जाती है।

मुझे स्मरण आता है ऋषि कहते हैं कि यदि चित्त को कोई संस्कार नहीं होता तो संसार में मानव शरीर के होने का कोई कारण नहीं होता है। मानव का यदि कोई कारण बनता है संसार में आने का तो वे चित्त के संस्कार हैं। वे ही मानव को उद्‌बुद्ध करके इस पृथ्वी–मण्डल पर लाते हैं।

परिणाम क्या? मेरे पुत्रों! मैं विशेषता मैं तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ, यह तो वन है परन्तु ऋषियों ने प्राण क्रिया से मन से सूक्ष्म तंतुओं को जानते हुए मेधावी बुद्धि को जाना, मेधावी को जानकर प्रज्ञा में चले गए और प्रज्ञा में जा करके उसका सन्म्बन्ध नाभि से होता है और नाभि के केन्द्र से होता है। वहाँ सर्व–संस्कार उद्‌बुद्ध हो जाते हैं। परिणाम क्या? लाखों वर्षों के संस्कार मानव के समीप आ जाते हैं, मानव के सामने नृत्य करने लगते हैं जैसे 'अवृताम्' एक खिलवाड़ करता रहता है इसी प्रकार के समीप आ करके नाना प्रकार के जन्मों के संस्कार मानव के द्वारा खिलवाड़ करने लगते हैं अथवा नृत्य करने लगते हैं, नृत्य में अपनी आभा को ले करके विद्यमान हो जाता है।

परिणाम क्या? नाभि–केन्द्र को जानने प्रयास करो। नाभि–केन्द्र से ही प्राण–रूपी इस आभा को ले करके वे तंरगें हृदय–स्थली को चलती हैं। वह जो हृदय है, बाह्य–जगत् है, बाह्य–जगत् जैसे परमात्मा का हृदय है इसी प्रकार आंतरिक जगत् में यह आत्मा का हृदय है, अन्तरात्मा का हृदय है जिस हृदय में नाना प्रकार की किरणें चलती हें, नाना प्रकार की आभाएं चलती हैं और यदि हृदय की क्रिया शान्त हो जाती है तो मानव कहता है कि यह तो मृतक हो गया है। मृतक हो गया है।

वह जो हृदय है उस हृदय में 'अङ्गुष्ठान' (अङ्गुष्ठ–मात्र) एक स्थली है उस स्थली में एक "अवृत्य–धेनु" है, उस धेनु के आंगन में अन्तरात्मा का वास है। वह अन्तरात्मा "आभ्याम् गति" को प्राप्त होने लगता है। वह जो आत्मा में परिणत होने वाला एक "आभ्याम् नाभिः हृदय कृताम् देवत्त्यम्" को प्राप्त होने वाला है। वह नाभि और हृदय की आभा कही जाती है।

वह जो हृदय गति कर रहा है, हृदय में एक आभा बन करके मानव के कण्ठ में समाहित हो रहा है। मुनिवरो! उसी कण्ठ से उद्‌गार चलते हैं, वही उद्‌गार मेधा को लाते हैं। वही उद्‌गार मानव के मस्तिष्कों का अध्ययन कर देते हैं। वही उद्‌गार है जो मानव की हृदयस्थली को जान करके, मानव की मानवता को जान करके इस संसार–सागर के पार होने का प्रयास करने लगते हैं।

परिणाम क्या? आज बेटा! मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिये आया हूँ कि मानव को नाभि–केन्द्र में प्रवेश करना चाहिये। यह जो नाभि–केन्द्र है इसमें साधक जब विद्यमान होते हैं, साधक जब साधना करने लगते हैं, जो योगाभ्यासी पुरूष होते हैं वे मूलाधार से नाभि–केन्द्र में जाते है नाभि केन्द्र से हृदय–केन्द्र में प्रवेश करते है। हृदय–केन्द्र से वे कण्ठ में गति करते है।

मैं बेटा! विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ, मैं अपने उस प्यारे प्रभु की महिमा का वर्णन करने आया हूँ। मैं अपने उस प्यारे प्रभु विश्वकर्मा ने इस मानव शरीर को कितनी महत्ता में रचा है, माता के गर्भस्थल में रचा है, कितना वह विश्वकर्मा है? कैसा पवित्र वह विश्वकर्मा है? इसीलिये हमारी जो

उपासना करने की जो दशा है, परमात्मा को किन रूपों में स्वीकार करें? वह विश्वकर्मा कहलाता है, वह कैसा विश्वकर्मा? उसने इस मानव शरीर को ऐसा रचा है, सर्वत्र ब्रह्माण्ड की कल्पना की है जैसे नाना प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ नाना आभा में गति करने वाली हैं, वे उसमें ओत–प्रोत रहने वाली है।

इसी प्रकार हे ममत्व, हे माँ! तू कितनी भोली है। तेरे गर्भस्थल में इन नाना चक्रों का निर्माण होता हो वह विश्वकर्मा निर्माण कर रहा है परन्तु मेरी भोली माँ को कोई ज्ञान नहीं होता है। वह कैसी मेरी प्यारी माँ है? जिनको यह ज्ञान नहीं होता, कौन निर्माणवेत्ता है, कौन निर्माण कर रहा है? कैसा वह विश्वकर्मा है? उस विश्वकर्मा की उपासना करनी हमारे लिये धर्म है।

उसकी महिमा का गुणगान गाना ही हमारे लिये उसकी आभा में परिणत हो जाना है और जब हम उसकी महिमा को ही नहीं जानते, उसकी रचना, उसकी रचना के गम्भीर रहस्यों में जाना नहीं चाहते तो प्रभु का स्मरण हम कैसे कर पायें। हम प्रभु की उपासना किन रूपों में करें यह हम नही जान पातें।

आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है कि हम परमात्मा की उपासना करते हुये, प्राणों की क्रिया को जानते हुये हम अपने मानवत्व को और महत्ता में ले जायें, जिससे हम इस संसार–सागर से पार हो जायें।यह संसार ऐसा एक अमूल्य संसार है, ये ऐसा विचित्र सागर है जब पृथ्वी के गर्भ में मानव चला जाता है।

मै उच्चारण कर रहा था। मेरे पूज्यपाद जब ऋषियों के द्वार पर पहुँचे तो उन पाँचों ऋषियों ने यह कहा कि महाराज हम नाभि को जानते हुये, हम अपने संस्कारों को प्रत्यक्ष जानना चाहते हैं, उन्हें भोग रूप नहीं, उन्हें हम जागरूक करके दृष्टिपात करना चाहते हैं, तो मेरे प्यारे वह ऋषियों का विषय रह गया। अनुभव का विषय है वे उन्हें साक्षात्कार जानते रहते थे।

ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में संसार की सर्वत्र आभा विद्यमान रहती है। सर्वत्र संसार का क्रिया–कलाप रहता है। हमें इसलिये वैदिक साहित्य को ले करके वेद की जो प्रत्येक शब्दावली है,वेद का जो प्रत्येक एक–एक मन्त्र हे वह परमपिता परमात्मा का वर्णन कर रहा है, वह उसकी गाथा गा रहा है, उसका वर्णन कर रहा है।

हमें वेद–रूपी ऋचाओं को ओम्–रूपी सूत्र में पिरो करके उसकी माला बना करके अपने कण्ठ में धारण करनी चाहिये। इसे कण्ठ में धारण करने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक ऋचा के रहस्य को जान करके हम प्रभु का गुणगान गाने वाले बनें। प्रभु का गुणगान कौन गाता है, कौन गाता है पुत्रों? जो एक सूत्र में माला, मनकों की माला बना करके कण्ठ में धारण कर लेता है। उसका कण्ठ विद्या से सजातीय हो जाता है, वेदरूपी ज्ञान से सजातीय हो जाता है। वह कण्ठ उसका आभूषण बनता है, वही उसका गहना है और ज्ञानरूपी गहने को धारण करके मेरी मां पुत्रों को महान् बना देती है, इसी गहने को धारण करके राजा अपने राष्ट्र को पवित्र बना देता है। उसी गहने को धारण करके गुरु अपने शिष्यों को पवित्र बना देता है। उसी गहने को धारण करके वैज्ञानिक विज्ञान में विज्ञानवेत्ता बन जाता है। उसी गहने को धारण करके जो पाण्डित्य है वह प्रत्येक वेद के मन्त्र की व्याख्या करके मन्त्र–दृष्टा बन जाता है वही माला है उसको धारण करके मानव संसार–सागर से पार हो जाता है।

हमें अपने को सजातीय बनाना है। हमें अपने नाभि–केन्द्र हृदय को जानना है। कल समय मिलेगा, तो बेटा! मै! कण्ठ की चर्चा करूँगा।

आज का विचार–विनिमय क्या? बेटा! मैं, यह जानता था, मुझे स्मरण आ रहा था कि में आत्मा तक पहुंच जाऊंगा परन्तु नहीं पहुंच पाया। क्योंकि आत्मा का अनुपम एक ऐसा विषय है जो गहन विषय को वर्णन करने के लिए नाना ऋषि नेति–नेति कहकर शान्त हो गए।

जो मैंने आज वर्णन किया है, नाना प्रकार के वाक्यों का पर्णन किया है मैंने तुम्हें एक सूत्र में पिरोयी हुई माला को धारण कराया है। इस माला को ऋषि जन पान करते हैं, उसे अपने कण्ठ में धारण करते हैं। उसे धारण करके, अपने कण्ठ को सजातीय बना करके इस संसार–सागर से पार हो जाते हैं। जो संसार नाना रूपों में हमें दृष्टिपात आ रहा है।

आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, वेद की महिमा का गुणगान गाते हुये इस संसार–सागर से पार हो गए। यह है बेटा! आज का वाक्य।

आज के उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि हम नाभि केन्द्र को जानें। यह नाभि केन्द्र क्या है? यह शकुन्तका है। जैसे पृथ्वी की नाभि याग है, इसी प्रकार हमारे मानव शरीर में याग हो रहा है। सप्त होता नाना साकल्य नाभि–रूपी यज्ञशाला में आहुति दे रहे हैं वे आहुति बन करके उससे नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण हो रहा है। नस–नाड़ियों में वह धातु–पिपाद प्रवेश हो रहा है। उससे मानव का जीवन संचालित होता है। वैज्ञानिक बनना चाहता है। वैज्ञानिक बन जाता है। वह दर्शनों की मींमासा करने लगता है तो दार्शनिक बन जाता है। वह खनिज धातु को जानने के लिए तत्पर हो जाता है, तो खनिज–वेत्ता बन जाता है वह शब्द विज्ञान को जानना चाहता है तो शब्द–विज्ञान–वेत्ता बन जाता है। परन्तु इसको जानने के लिए तत्पर रहना चाहिए। यह है बेटा! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

५. पंचम अध्याय–मानव जीवन सत्य से ओत–प्रोत होना चाहिए 06–07–1978

जीते रहो

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि हमारा जो वेद का ज्ञान है, वह अनुपम माना गया है। वह उस परमपिता परमात्मा की अद्वितीय वाणी है, जिस वाणी को परम्परा से ही ऋषि मुनि उसी के आश्रित हो करके ऋषि और मुनि बन जाते हैं।

वह एक ऐसा अमूल्य उद्गार है, वह एक ऐसा अमूल्य वृत्त कहलाता है, जिसको जो मानव धारण कर लेता है वह अमृतमय बन जाता है। वह ऐसा अमूल्य उद्गार है कि जिसे स्पर्श कर लेता है वही स्वर्णमय बन जाता है, वह कैसा अमूल्य ज्ञान है पुत्रो? वे कैसा हृदयग्राही है? प्रत्येक मानव उस हृदयग्राही ज्ञान को पान करना चाहता है, उसे अमृतमय माना गया है। वह अमृत है, जो भी उसे पान कर लेता हे वह अमरावती को प्राप्त हो जाता है।

मुझे बहुत पुरातन काल की वार्ता स्मरण आने लगती है। एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि से ब्रह्मचारी सुकेता ने यह कहा कि महाराज! यह वेद क्या है? भारद्वाज मुनि ने कहा कि वेद प्रकाश है, परमात्मा का दिया हुआ प्रकाश है? यह अमूल्य है। ब्रह्मचरी सुकेता ने कहा कि महाराज! यह जो प्रातःकाल में सूर्य उदय होता है यह भी ता प्रकाश है। क्या यह प्रकाश और वह प्रकाश दोनों का समन्वय हो जाता है? भाद्वाज मुनि कहते हें, ''नहीं!'' यह बाह्म नेत्रों का प्रकाश है। यह जो सूर्य है, वह व्यापारिक प्रकाश कहलाता है। इस प्रकाश में मानव अपना कार्यक्रम प्रारम्भ कर देता है। व्यापार वाला व्यापारिक बन जाता है। यह नेत्रों का देवता बन करके प्रकाश को देता है।

परन्तु वेद–रूपी जो प्रकाश है, वेद–रूपी जो समर्य है, यह मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित करता है यह अन्तःकरण में दिव्य–ज्योति प्रदान करता है। यह अमृतमय है। जो इस अमृत को पान कर लेता है वह अमरावती को प्राप्त हो जाता है। यह ऐसा अमूल्य अन्तःकरणीय प्रकाश कहलाता है। इस प्रकार मुनिवरो! सूर्य प्रातःकाल में उदय होता हे और नेत्रों का देवता बन करके आता है परन्तु जब यह उद्बुद्ध स्वः अग्ने कह करके बेटा! जब देव रूपी अङ्कुर उत्पन्न होता है और जब उसका वृक्ष बनता है तो मानव का अतःकरण जागरूक हो जाता है। मानव दिव्य–ज्योति वाला बन जाता है।

आओ, मेरे पुत्रों! में विशेष चर्चा इस सन्म्बन्ध में तुम्हें उच्चारण करने के लिए नहीं आया हूँ। वाक्य यह चल रहा था कि वेद उस परमपिता परमात्मा की वाणी है और वह वाणी कैसी अमूल्य है? मानव के हृदयों को उज्जवल बनाती है।

कुछ काल से बेटा! हमारी कुछ विवेचना चल रही है। मानव विश्व–विज्ञान की चर्चाएँ चल रही हैं। आत्म–विज्ञान, आत्मा का गृह, आत्मा जिस स्थली में वास करता है, वह कैसी अमूल्य पुरी है? पुत्रों! जिस पुरी में विद्यमान हो करके यह आत्म–तत्व विद्यमान है, आत्म लोक कहलाता है, वह कैसी अमूल्य पुरी है।

आज मैं तुम्हें कुछ हृदय की चर्चा करने जा रहा हूँ। जैसे नेत्रों को, नाभि–केन्द्र को जागरूक कर देते हैं, तो नाना संस्कार मानव के समीप उद्‌बुद्ध हो जाते हैं इसी प्रकार उन संस्कारों की जो स्थली है वह उद्‌बुद्ध तो हो गए हैं। जागरूक भी हो गए हैं, चित्त के मण्डल में से उनकी प्रतिभा भी आ गयी है परन्तु उनका वास करने की जो सथली है, यह तो मानव का हृदय ही कहलाता है। जैसे परमात्मा का सर्व यह ब्रह्माण्ड, सर्व–जगत् उस परमात्मा का हृदय कहलाया गया है। इसी प्रकार इस मानव–शरीर में भी हृदय कहलाता है और वह हृदय कैसा है? जहाँ अङ्‌गुष्ठ–मात्र स्थली है। उस हृदय में यह मानव का हृदय ही तो है, हृदय से ही मानव को श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा की जो स्थली है वह हृदय माना गया है। प्रत्येक मानव कहता है कि यह अमुक प्राणी श्रद्धालु है, यह श्रद्वामय है। परन्तु वह श्रद्धा किसे कहते हैं? जो मानव सत्य पर आरूढ़ हो जाता है, उस आरूढ़ का जो परिणाम है, उसका नाम श्रद्धा कहलाता है।

संसार में कोई भी मानव हो जब तक वह सत्यता को अपनाता नहीं है, सत्यता पर वह आरूढ़ नहीं होता, तब तक उसकी श्रद्धा निष्फल हो जाती है। परन्तु श्रद्धा का अभिप्राय यह है कि ये जो तीन शब्द हें– श्रद्धा, ब्रह्मचर्य और तप। सत्य पर आरूढ़ होने का नाम श्रद्धा है और ब्रह्मचर्य की महान् साधना का नाम तप कहलाता है।

आज कोई भी मानव तपस्वी बनना चाहता है तो उसे ब्रह्मचर्य को धारण करना हो गा और उसको ऊर्ध्व–गति बनानी होगी, यही मानव का तप कहलाता है।

विचार यह आरम्भ हो रहा था कि मानव का जो हृदय है, उस हृदय में श्रद्धा होती है और वह जो श्रद्धा है, वही मानव को ऊँचा बना देती है। वही दक्षिणा को धारण करती है। यज्ञमान की यज्ञशाला में पुरोहित याग कर रहा है। ब्रह्मा बन करके याग को कर रहा है परन्तु वह जो दक्षिणा की उपलब्धि है, वह हृदय से उत्पन्न होती है वह कहता है, बिना दक्षिणा के याग सम्पन्न नहीं होता। परन्तु वह दक्षिणा देता है कहाँ से? हृदय से देता है। उस दक्षिणा का सम्बन्ध हृदय से होता हैं।

मेरे प्यारे? दक्षिणा का अभिप्राय 'द्रव्य' ही नही कहलाता। द्रव्य तो मानव के उपार्जन का एक साधन है, उदर की पूर्ति करने का एक साधन है। परन्तु दक्षिणा का अभिप्राय, ब्राह्मण पुरोहित कहता है, हे यज्ञमान! मेरे द्वारा जो दुष्कर्म हैं, दुर्व्यवहार है, वे त्रुटियाँ हैं उनकों मुझे दक्षिणा में प्रदान करो। वह दक्षिणा में प्रदान कैसे करता है? पुरोहित कहता है उस अग्नि को तेरे गृह में उद्‌बुद्ध किया है चाहे वह विचारों की अग्नि है, चाहे वह यज्ञशाला में देव–पूजा की अग्नि हो। यह सब अग्नियाँ तेरे गृह में सदैव उद्‌बुद्ध रहनी चाहिये, इनका प्रकाश रहना चाहिये। यह तेरे हृदय में समाहित हो जानी चाहिये।

यज्ञमान जो श्रद्धामय है, जो सत्य में आरूढ है, वह सत्य में ही दक्षिणा को प्रदान कर देता है और वह कहता है, हे पुरोहित! यह लीजिये मैं आपको दक्षिणा प्रदान कर रहा हूँ। वह अपने गृह में नित्यप्रति सकंल्प कर रहा है – मैं देव–पूजा करूँगा। वह विचारता है कि मैं सत्य को अपना करके श्रद्धा में आरूढ़ होऊँगा। सत्यता को अपनाने वाला हृदयग्राही कहलाता है।

हमें हृदय को उज्ज्वल बनना है। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि दधीचि आश्रम में कुछ ब्रह्मवेत्ताओं का समूह विद्यमान हो गया। अश्विनी कुमार भी विद्यमान थे, महात्मा भुन्जु भी थे। महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज भी द्वार पर जा पहुँचे। नाना ब्रह्मवेत्ता थे, जो ब्रह्म के ऊपर चिन्तन करने वाले, ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले। वे ऋषि से कहते है, महात्मा दधीचि से, कि महाराज! हम यह जानना चाहते हैं कि हृदय क्या है? उन्होंने कहा हृदय तो सत्यमय है। उन्होंने कहा कि मानव का हृदय और परमात्मा के हृदय में क्या अन्तर्द्वन्द्व है?

हमारे ऋषि–मुनियों ने गागर में सागर की कल्पना की है। यह कैसा गागर और सागर की आभा में ऋषि उच्चारण कर रहा है। वेद का ऋषि जब यह कहता है कि महाराज! मानव हृदय तो सत्यमय है और परमात्मा के हृदय और मानव के हृदय में क्या अन्तर्द्वन्द्व है? ऐसा है कि मानव का हृदय तो यह शरीर है और परमपिता परमात्मा का जो हृदय है, वह सर्व विश्व परमात्मा का हृदय माना गया है। जिस सर्व विश्व में सर्वत्र प्राणी वास कर रहा है। लोक–लोकान्तर उसके हृदय में वास कर रहे हैं कैसा परमात्मा का हृदय है। कैसा वह चैतन्य–देव का हृदय है जिसमें असड्.ख्य सूर्य वास करते है, जिसमें नाना बृहस्पति वास करने वाले हैं यह सर्व विश्व परमात्मा का हृदय है और कैसा हृदय है? वायु–वेग में गति कर रहा है, अग्नि प्रचण्ड हो करके गति कर रही है। देखो, जल अपनी आभा में गति कर रहा है। पृथ्वी अपना नृत्य कर रही है। सूर्य प्रकाश में नृत्य कर रहा हैं ध्रुव की नाना मण्डल परिक्रमा कर रहे हैं कैस प्रभु का हृदय है? उस हृदय में सत्य ही सत्य समाहित हो रहा है।

परमात्मा का हृदय कितना महान्, कितना विचित्र है। जब उदान प्राण के साथ में यह आत्मा शरीर को त्याग देता है, यह भी परमात्मा के हृदय में वास करता है। यहाँ जैसे मानव की एक–एक आभा रमण करती है, वह कण्ठ की महा–प्रतिभा बन करके , वे आभा बन करके वार करती रहती है।

परमात्मा के हृदय का और मानव के हृदय का, दोनों का समन्वय होता है और उस काल में समन्वय होता है जब यह आत्म–वेत्ता हृदय को जान लेता है। हृदय से ही तो यज्ञ की उत्पत्ति होती है और हृदय में ही होता बनता है। हृदय से ही माता अपने पुत्र से प्रीति करती है। मां अपने हृदय से हृदय को ग्राही कर लेती है। माता का पुत्र व्याकुल हो रहा है। क्षुधा से पीड़ित हो रहा है परन्तु माता अपने हृदय से हृदय–ग्राही को लोरियों का पान करा देती है। बाल की क्षुधा समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार जो मानव इस संसार में विवेक को प्राप्त होने वाला है, जो मानव व्याकुल हो रहा है, उस परमात्मा का जो हृदय है, परमात्मा को उसको अपने हृदय से आलिङ्‌गन करके अमृत पुत्रों को अमृत का भरण कर देता है। अमृत को ओत–प्रोत करा देता है।

ये नाना पृथ्वियाँ भी परमात्मा के हृदय में समाहित हो रही हैं। जिस प्रकार माता की हृदय–स्थली में हम जैसे पुत्रों का निर्माण होता है और वह जो परमपिता परमात्मा है वह कैसा विश्वकर्मा है, कैसा रचनाकार है? इस मानव–जीवन का, मानव–शरीर का निर्माण करता है। वह विश्वकर्मा बन करके ही तो निर्माण कर रहाहै। कैसा विचित्र निर्माण–वेत्ता है, कैसा वह विश्वकर्मा है? मानव के शरीर की रचना कर देता है जिसमें आत्मा का वास रहता है। आत्मा इसी में तो रहती है। परन्तु वह माता का हृदय है और विश्वकर्मा रचा कर रहा है। माता वसुन्धरा उसका पालन–पोषण कर रही है।

यह जो पालन–पोषण होता है यह भी तो हृदय से ही होता है। हृदय में वह शब्द समाहित हो जाता है। एक राष्ट्रपिता है, अधिराज बना हुआ है परन्तु वह यह जानता है कि तुझे जो अधिराज बनाया है, राजा की उपाधि प्रदान की– इसीलिए कि तुझे प्रजा को सुखी बनाना है, महान् बनाना है। तो प्रजा के लिए वह हृदय में सर्व राष्ट्र को समाहित कर लेता है। सर्व राष्ट्र राजा के हृदय में समाहित हो जाता है और वह उस प्रजा से, राष्ट्र से कुछ नहीं इच्छा करता।

मुझे स्मरण है पुत्रो! महाराजा युवनाश्व नाम के राजा हुए हैं यह मान्धाता के पिता कहलाते थे परन्तु वह स्वयं कला–कौशल करते थे। स्वयं कृषि उद्यम करते थे और उसके बदले अन्न आता उसको पान करते और पान करके वे राष्ट्र को ऊर्ध्व गति देते रहते। एक समय उनके द्वार कुछ ऋषियों का आगमन हुआ, और ऋषियों का आगमन हुआ, और ऋषियों ने कहा महाराज! तुम राष्ट्र के अन्न को क्यों नहीं ग्रहण करते हो? तब राजा कहते हें ''हे ऋषियों! यह तो सब तुम जानते हो। तुम मेरे से क्यों जानना चाहते हो?'' उन्होंने कहा, ''नहीं ऋषि राजन्? हम नहीं जानते।'' तब राजा ने कहा कि मैं असीलिए राष्ट्र के अन्न को, कोष के अन्न को ग्रहण नहीं करता कि उस अन्न से मानव की बुद्धि भ्रमित हो जाती है तो उस मानव में आलस्य और प्रमाद आ जाता है और जब आलस्य और प्रमाद राष्ट्र में आ गया तो राजा राष्ट्र का पालन नहीं कर सकता। क्योंकि उसमें मान आयेगा और जहाँ मान अपमान आयेगा वहाँ राष्ट्रीयता नहीं रहेगी। मान अपमान से राष्ट्रीयता का सन्म्बन्ध नहीं होता है।

उस समय जब ऋषियों ने कहा कि महाराज! इस राष्ट्र के अन्न में क्या इतना दोषारोपण है? उन्होने कहा, 'हा' यह राष्ट्र कोष का जो अन्नादि है यह तो पृथ्वी की आभा में आने वाला हैं राष्ट्रीयता के समाज के निर्माण में आना चाहिये। परन्तु यदि राजा स्वंय इस अन्न को ग्रहण करेगा तो राजा, राजा नहीं रहेगा, वह पामर प्रवृत्ति में बन जायेगा। प्रवृत्ति भ्रष्ट हो जायेगी। परिणाम यह होगा कि मैं अपने हृदय से राष्ट्र का कल्याण चाहता हूँ तो वह नहीं कर सकूँगा। महाराजा ने जब यह कहा तो ऋषिवर नतमस्तक हो गये।

इसीलिये ऋषिवर राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नहीं किया करते थे। राजा स्वंय नहीं करता। क्योंकि राजा की बुद्धि जब ऐश्वर्य में आ जाती है, राष्ट्रीय जो अन्न है, इसमें रजोगुण, तमोगुण प्रधान होता है। रजोगुण तमोगुण की प्रधानता आते ही , राजा का विनाश होता है। परिणाम क्या? मेरे प्यारे! वह भी मानव के हृदय से सम्बन्धित हैं। वह मानव का हृदय ही तो है, राजा का हृदय है, राजा कहता है कि मेरा अन्तःकरण मेरा हृदय इसको स्वीकार नहीं करता।

यह हृदय में ही तो सर्वत्र समाहित रहता है। राष्ट्र का राष्ट्र मानव के, राजा के हृदय में समाहित रहता हैं। मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है। माता पुत्र का पालन कर रही है, हृदय–ग्राही बना रही है। परन्तु वह अपने कर्त्तव्य–वाद मे उस बालक को ऊर्ध्वा गति में गति दे रही हैं । परिणाम क्या? सर्वत्र मानव का यह जीवन क्या? जितने संकल्प हैं, मानव की जितनी धाराएँ हैं– वे सब हृदय में समाहित रहती है।

मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय उद्दालक गौत्र में एक श्वेतकेतु नाम के ऋषि हुये हैं महाराज श्वेतकेतु ऋषि भयंकर वनों में जा करके एक वेद–मन्त्र को ले करके अनुसन्धान करने लगे। ''चित्रम् मृथाम् ब्रह्मेः वृत्ताम् चित्राः।'' वह इस महान् चित्रावली को ले करके, चित्र को ले करके अनुसन्धान करने लगे। जब अनुसन्धान करने लगे तो एक समय शाण्डिल्य मुनि वहाँ पहुँचे। शाण्डिल्य मुनि ने कहा, ''कहो! ऋषिवर! क्या कर रहे हो?'' उन्होंने कहा कि मैं इस हृदय को विचार रहा हूँ, मैं हृदय के ऊपर चिन्तन कर रहा हूँ। हृदय में एक स्थली ऐसी है, एक नाड़ी ऐसी है, एक नाड़ियों का समूह ऐसा है जिसका पुरातत् नाम की नाड़ियों से सन्म्बन्ध है और उन नाड़ियों का सन्म्बन्ध बाह्य–चित्त से होता है। आन्तरिक चित्त दोनों का मिलान हो करके वे जो 'नस :प्रवाह' नाना प्रकार के लोक–लोकांतर अथवा जो हृदय परमात्मा का है, मैं अपने हृदय का समन्वय कर रहा हूँ, दोनो का मिलान करना चाहता हूँ। वह हृदय का मिलान करने लगे।

वह जो बाह्य आन्तरिक मानव का, ऋषि का हृदय था उस हृदय में से उद्‌गार आने लगे, अग्नियाँ प्रचण्ड होने लगीं, ज्ञान की। वायु वेग से गति होने लगी, प्राण उद्‌बुद्ध होने लगे। जब प्राण उद्‌बुद्ध होने लगे और दृष्टि दिव्य होने लगी। तो जब इसका मिलान बाह्य परमात्मा के हृदय से, अन्तरिक्ष से हुआ तो उनके जो पूर्वज थे, मानों एक हजारवें जो पूर्वज थे, उनके चित्र परमात्मा के हृदय में अपने हृदय का मिलान करते हुए चित्र दृष्टिपात आने लगे । मेरे पुत्रो वे क्यादृष्टिपात आ रहे थे, जो पूर्वज थे उनके जो महापिता पड़पिता हजारवे पड़पिता जब उनके चित्र इस वायुमण्डल मे परमात्मा के हृदय का अपने हृदय का मिलान करते हुए चित्र दृष्टिपात होने लगे, वह चित्रावली कहलाती थी।

मेरे प्यारे! मानवीय विज्ञान बड़ा विशेष माना गया है हमारे दर्शनकारों ने, आचार्यों ने इस हृदय को एक चित्रावली, एक विज्ञान का कुण्ड माना है, विज्ञान का एक क्षेत्र माना है। इस अन्तरिक्ष का मिलान होते ही परमात्मा के हृदय में, यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड पिरोया है इसी प्रकार मानव के हृदय में जिसे हम हृदय कहते हैं। ''हृदयः हृदयः ब्रह्माः कृतः।'' जब साधक विद्यमान होता है, साधक कहता है ''नाभ्याम् हृदयाम्'' मैं हृदय को उज्जवल बनाना चाहता हूँ। मेरा हृदय कैसा हो? जैसा मैं बाह्मा–जगत् में, ऐसा मेरा आन्तरिक–जगत् भी उसी प्रकार का सजातीय हो। जब मानव के हृदय में कालिमा समाहित हो जाती है, वह बाह्य–जगत् कुछ है और आन्तरिक जगत् कुछ है। तो वह जन्म–जन्मांतरों के आवागमन के संस्कारों को उद्‌बुद्ध करता है, वह आवागमन के संस्कारों को उद्‌बृद्ध करके पुनरूक्ति मरणम् पुनरूक्ति जीवन की कल्पना कर रहा है। ऐसे–ऐसे संस्कारों को उद्‌बुद्ध कर रहा है। यदि किसी मानव के हृदय में कालिमा नहीं है, उसका बाह्य जगत् भी स्वच्छ है, सत्यता में आरूढ़ है, आन्तरिक जगत् भी सत्यता में आरूढ़ है, वह मानव व्यापारिकवाद में जा रहा है। वह धर्म के क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है वह इतना व्यापक हृदय वाला है कि उसे न किसी से घृणा होती है, न ईर्ष्या होती है, न द्वेष होता है। वह तो घृणा से ''आशा बृहि'' हो जाता है। वह ऐसा स्वच्छ बन जाता है कि परमात्मा सत्य में है इसीलिए मैं भी सत्य हूँ। हृदय भी परमात्मा के सत्य में है और मेरा हृदय भी सत्य–ग्राही कहलाता है।

विचार–विनिमय क्या? कि आज हम सत्य में आरूढ़ होने वाले बनें। परन्तु यह कैसे होगा? जब हम अपने हृदय की उपासना करेंगे। हृदय में जो जन्म–जन्मांतरों के अङ्कुर विद्यमान रहते हैं, इन अङ्कुरों में जन्म–जन्मातंरों की आभा होती है। जैसे नाभि–केन्द्र में वे संस्कार जागरूक होते हैं, ऐसे ही हृदय–स्थली में संस्कार उद्‌बुद्ध हो करके मानव के हृदय में समाहित हो जाते हैं। वह हृदय–ग्राही बन जाता है। जैसे परमात्मा के हृदय में सत्य विद्यमान होता है, परमात्मा के हृदय में हमारे पिता, महापिता, हजारवें पिताओं के शब्दों के साथ में जो उनके चित्र गति कर रहे हैं, वह मानव के हृदय में हृदय–ग्राही हो रहे है।

परिणाम क्या? ऋषि कहता है शाण्डिल्य मुनि महाराज से कि महाराज! मैं रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण को चित्रों में दृष्टिपात करना चाहता हूँ। ऋषि को तमोगुणी शब्द भी दृष्टिपात आते, रजोगुणी भी दृष्टिपात आते। परन्तु उनको दृष्टिपात करके वह यन्त्रों में, उन्होंने कुछ यन्त्र भी निर्माण किये थे। उन यन्त्रों में बेटा! प्रत्येक जो मानव श्वास लेता है, प्रत्येक श्वास के साथ में परमाणु जाता हुआ और परमाणु के साथ में चित्र जाता हुआ और चित्र गति करता हुआ और गति में भी परमात्मा के हृदय में वह समाहित होता हुआ ऋषियों को दृष्टिपात आता रहता था।

तो विचार–विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें हृदय–ग्राही बनाने के लिये आया हूँ मानव का हृदय यह कैसा हृदय है? हृदय–रूपी रथ में विद्यमान हो करके परमात्मा के हृदय में मानव समाहित होता रहा है। आज नही परम्परा का यह साहित्य है। परम्परा की दार्शनिकता को ले करके तुम्हें ये वाक्य प्रगट कर रहा हूँ।

विचार–विनिमय क्या? मुझे स्मरण आता रहता है। महाराजा अश्वपति के याग होता रहा है। मुझे स्मरण है, नाना यागों में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। सर्वत्र यज्ञशाला हृदय में समाहित रहती थी। एक मानव राष्ट्र का भ्रमण करता है, वह सर्वत्र राष्ट्र का राष्ट्र मानव के हृदय में समाहित हो जाता है। कैसा विचित्र है? एक राजा है और वह राजा अपने राष्ट्र का पुनः निर्माण करना चाहता है। तो राजा के हृदय में राष्ट्र का प्रथम उसका निर्माण उसके हृदय में हो जाता है। एक मानव गृह का निर्माण करना चाहता हैं। वह चाहता है कि मैं एक गृह का निर्माण करूँगा। तो उसके निर्माण का जो चित्र है, उसके निर्माण की जो आभा है, उसका जो जिस प्रकार का निर्माण होना है, मानव के हृदय में उसका निर्माण हो जाता है।

यह कैसा हृदय है बेटा? जिस हृदय में निर्माण हो जाता है और शिल्पकारों को यह आज्ञा देता है कि उसका इस प्रकार का यह निर्माण होना है। शिल्पकार के हृदय में वह ही गृह का निर्माण हो जाता है। उसके पश्चात वह शिल्पकार उसका निर्माण कर देता है। इसी प्रकार जब किसी काल में परमात्मा ने यह संसार रचाया, जब प्रभु ने यह जगत रचा, उस समय प्रभु के सर्वत्र हृदय में इस सर्व–सृष्टि का निर्माण हो गया था। जब निर्माण हो गया था, परमात्मा के अन्तर्हृदय में निर्माण हो गया उसके निर्माण होने के पश्चात यह बाह्य–जगत् बन गया। सूर्य समय पर उदय होता है, समय पर अस्त हो जाता है। चन्द्रमा समय पर उदय होता है वह समय पर अस्त हो जाता है ,वह शीतलता को लिये होता है, वह तेज को लिये होता है। नाना प्रकार के सूर्य है, नाना लोक हैं, एक–दूसरे की आकर्षण शक्ति से यह लोक–लोकान्तर हृदय ग्राही रहे हैं।

परिणाम क्या? यह कैसा विचित्र, विज्ञानमय परमात्मा का हृदय है। मुझे स्मरण है एक समय बेटा! हम कुछ शिष्य, जिज्ञासु अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर पहुँचे। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, 'हे ब्रह्मचारियो! तुम्हारा आगम क्यों हुआ? अब हमने कहा, 'हे भगवन! हम इसलिये आये हैं कि परमात्मा के हृदय में क्या विज्ञान है? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि प्रभु के सर्व विज्ञान को मैं तो जान नहीं पाया हूँ। परन्तु इतना उच्चारण किये देता हूँ कि मेरी जो यह विज्ञानशाला है, यह मेरी आध्यात्मिक विज्ञानशाला है और यह मेरी भौतिक विज्ञानशाला है। भौतिक विज्ञानशाला में मुझे लगभग 372 आकाश गड्.गाएँ दृष्टिपात हुयी हैं, और आध्यात्मिक विज्ञान में जब मैं पहुँचा तो मुझे 1 करोड़ 92 लाख बावन हजार 500 आकाश गड्.गाएँ (1,92,52,500) मुझे आध्यात्मिक–वाद में दृष्टिपात हुयी है।

मेरे प्यारे! आकाश गड्.गा को जब प्राप्त करने लगे हम पूज्यपाद से, तो पूज्यपाद उच्चारण करने लगे कि जब मैं भौतिक–यन्त्रों के द्वारा एक आकाश–गड्.गा के सूर्यो की गणना करने लगा तो मुझे लगभग 5 खरब, 5 अरब, 95 करोड़ 85 लाख 52 एक ही आकाश गड्.गा में मुझे सूर्य दृष्टिपात आने लगे। जब मैं आध्यात्मिक–क्षेत्र में पहुँचा तो मैं एक आकाश गड्.गा के सूर्यों की गणना नहीं कर सका। वह अरबों में नही, खरबों में नहीं, नील और पदम् में

जा पहुँची। परन्तु मेरे से गणना समाप्त हो गयी। कितना प्रभु का व्यापक हृदय है और ऐसी–ऐसी यहाँ करोड़ों आकाश गड्.गाएँ मुझे आध्यात्मिक मार्ग में दृष्टिपात आने लगी।

हे ऋषियों! परमात्मा का हृदय तो इतना विशाल है। जो अपने हृदय को जानेगा, अपने हृदय का परमात्मा के हृदय से समन्वय करेगा तो यह वाणी उच्चारण करने में असमर्थ हो जायेगी। वह वाणी नेति–नेति उच्चारण करने लगेगी। तो परिणाम क्या? हे मुनिवरो! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने ये वर्णन कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि परमात्मा का जो यह जगत् है यह उसका हृदय हैं। मानव का जो हृदय है वह भी हृदय है जिसमें सर्वत्र माननीय ब्रह्माण्ड, मानवीय दर्शन ओत–प्रोत रहता है।

मेरे पुत्रो! विचार–विनिमय क्या? मैं कोई विशेष व्याख्याता नहीं हूँ मैं बुद्धिमान नहीं हूँ। केवल परिचय देने चला आता हूँ, यह परिचय दे रहा हूँ कि यह जो हृदय है, मानव को, इसको उदार बनाना चाहिये। हे परमात्मन्! मेरे हृदय को उदार बना दो। हे प्रभु! मेरा दय बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों एक से रहनह चाहिए मेरे इस अर्न्तहृदय मे छल कपट नही रहना चाहिए यदि मै कपट ओर छल और मिथ्या उच्चारण करता रहा तो प्रभु मै माताओ के गर्भ मे आवागमन मेरा लगा ही रहेगा हे प्रभु यदि मेरा अर्न्तहृदय और बाह्य हृदय दोनो मेरा बाह्न जगत और आन्तरिक जगत दोनो एक सूत्र में आ गए, एक ही हो गए स्वच्छ हो गय, सत्यता में हम आरूढ़ हो गए तो हम आवागमन के उस धाम आवागमन की सीमा को हम दूर कर पायेगें। अन्यथा पुनरूक्ति मरण और पुनरूक्ति जीवन लगा रहेगा। हम आज जीवित हो गए हैं तो कल हम मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं पुनः–पुनः शरीरों को धारण कर रहे हैं।

हे प्रभु! यह मेरी कामना है, अन्तिम छोर में मैं यही चाहता हूँ। मैं इस संसार में जीवन नहीं चाहता। में मृत्यु नहीं चाहता हूँ, मैं तो प्रभु 'एक–रसता' चाहता हूँ जिससे 'एक–रस' हो जाऊँ। एक–रस उस काल में होऊँगा जब प्रभु! मैं आत्म–लोक को जानने लगूंगा। मेरा आत्म–लोक यह मानव शरीर है, प्रभु! यह आत्म–लोक मेरा शारीरिक विज्ञान है, इसमें भौतिक–विज्ञान भी है, आध्यात्मिक विज्ञान भी है। में आध्यात्मिक वाद को प्राप्त होता हुआ परमात्मा के अर्न्तहृदय, हे प्रभु! मैं आपके हृदय को अपने हृदय से मिलान करता हुआ, हे प्रभु! मैं एक महान! बनता चला जाऊँ। जैसे भगवन्! बाह्य जगत में आपका यह जो शरीर है, यह कैसा शरीर है? हे प्रभु! आपके यह जो अग्नि है, यह आपका सिर ऊर्ध्व–मस्तिष्क कहलाता है। यह अग्नि प्रभु का मस्तिष्क है, चन्द्रमा, सूर्य प्रभु के चक्षु हैं।

मेरे प्यारे! चन्द्रमा प्रभु ''अब्रहाः चक्षुः हरगामी गच्छम् रूद्र भागाः'' और देखो, परमात्मा का जो ''क्रिलाक–यपमा बृहेः वृत्त देवा'', कहलाता है। हे प्रभु! पृथ्वी पाद कहलाते हैं ये आश्वासन जङ्घा के रूप में परिणत हो रही हैं। हे प्रभु! आपका जो कृति सात प्रकार की सप्तम् अङ्ग कहलाते हैं। आपका जो हृदय है यह बाह्य–जगत् कहलाता है, हे प्रभु! आपका जो वायु है वह कृतियाँ कहलाते हैं, वे कृतियाँ वायु के रूप में गति कर रहे हैं। हे प्रभु! आपका यह जो श्रोत्र चल रहा है ब्रह्माण्ड का, यह ऐसा विचित्र है कि इसको महान् से महान् बुद्धिमान साधक भी गण भी भगवन्! आपको नेति–नेति उच्चारण करके मौन को जाते हैं।

हे प्रभु! इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में जिसमें आत्मा वास करता है, इसमें भी इसी प्रकार चक्षु है, मस्तिष्क है, हृदय है, घ्राण है, नाभि है, हे भगवन् हृदय है, 'हृदयनि गच्छम्, ब्रह्म लोकाः'– इसमें से ही तो आत्म–लोक कर प्रतीति होती है। तो प्रभु! मैं आपके हृदय में अपने हृदय का समन्वय चाहता हूँ। यह सर्व ब्रह्माण्ड आपके हृदय में समाहित रहता है। ऐसे ही हमारे हृदय में भी राष्ट्र के राष्ट्र ओत–प्रोत हो जाते हैं। सर्वत्र विश्व इसमें विद्यमान हो जाता है तो हे प्रभु! दोनों का समन्वय हो जाए तो हमारा हृदय पवित्र हो जाए।

प्रभु! हम चाहते क्या हैं, हमारी कामना क्या है? हमारी एकाकी कामना है कि हमारा हृदय स्वच्छ बन जाए। हमारे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो जाए। हम सत्य को स्वीकार करने लगें। सत्य क्या है? सत्य वह कहलाता है जो प्रभु का दिग्दर्शन है,? वही तो सत्य है। सत्य क्या है? सत्य मानवीय दर्शन है। मानवीय दर्शन क्या है? कि अपने में ही अपने को दर्शन करना वह मानवीय दर्शन कहलाता है।

हे प्रभु! मैं श्रद्धा के क्षेत्र में जाना चाहता हूँ, श्रद्धा सत्य को कहते हैं। जो सत्य पर आरूढ़ हो गया है वही मानव श्रद्धालु कहलाता है। वह ही श्रद्धामय होता है और जो ब्रह्मचर्य को जान गया है ब्रह्म और चरी के दो ही शब्द हैं और उन परमाणुओं की ऊर्ध्वगति बनाता है, वह तपस्वी कहलाता है। श्रद्धा मानव के हृदय से उत्पन्न होती है। तुम्हें यह प्रतीत है जब चक्राणि ने यह कहा था याज्ञवल्क्य से, ''महाराज! यह पृथ्वी, पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में और वायु अन्तरिक्ष में और अन्तरिक्ष महतत्व में, महतत्व में पुनरूक्ति माला बन गई, सूत्र बन गया है। आगे सूर्य चन्द्रमा में, और चन्द्रमा अकृत्यम् गंधर्व में और गंधर्व इंद्र में और इंद्र प्रजापति में और प्रजापति याग में और याग दक्षिणा में और दक्षिणा हृदय में समाहित रहती है।

हृदय में क्या समाहित रहता है? दक्षिणा का सन्म्बन्ध हृदय से है और दक्षिणा वह है कि यज्ञमान की जितनी त्रुटियां हें, वह पुरोहित जब अपने में धारण करके और ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त कर देता है, दक्षिणा को ग्रहण करने का अधिकार उसे प्राप्त होता है।

मैं विशेषता तुम्हें देना नहीं चाहता हूँ। विचार क्या है कि हमारे यहाँ बेटा! एक–दूसरे में समाहित होता हुआ जगत् है, एक–दूसरे में लय हो रहा है। करोड़ों, अरबों–खरबों की आभा में यह जगत् तरङ्गित हो रहा है और तङ्गित होता हुआ प्रभु का अमूल्य जगत् है।

ये वाक्य अब मैं समाप्त करने जा रहा हूँ। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और यह स्वीकार करते चले जाएं कि हमारा हृदय पवित्र पवित्र हो। हे परमात्मन्! हमारे हृदय में माधुर्यता हो, हमारे हृदय में आलिङ्गन करने की शक्ति जैसे माता पुत्र का आलिङ्गन करने स उसे हृदय–ग्राही बना करके, प्रीति दे करके बालक को सुतुष्ट कर देती है, इसी प्रकार हमारे हृदय का प्रभु हृदय से मिलान हो और समन्वय हो।

हम दूसरों के हृदय को विजय करने वाले हों, अपने हृदय को हृदय ग्राही बनाते चलें जाएं, हमारे हृदय से सत्यता न जाए। मिथ्या न आ जाये और सत्यता चली न जाए, यही हृदय को जानना हैं।'' पदों की लोलुपता में, द्रव्य की लोलुपता में इस हृदय का प्राण न चला जाए।

हृदय का प्राण तो सत्य है मुनिवरो! हृदय की मृत्यु मिथ्या है। मिथ्या हृदय में समाहित न हो जाए। यदि हृदय में मिथ्या समाहित हो गयी तो इस हृदय का प्राण चला गया और प्राण चला गया तो मृत्यु हो गयी, मृत्यु हो गई तो अन्धकार आ गया और अन्धकार आ गया तो वहाँ मानव को कुछ दृष्टिपात नहीं आता, अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिपात आएगा, वह मृत्यु हो जाती है।

जहाँ सत्य रहता है। हृदय में सत्य रहना चाहिए। सत्य होगा तो प्रकाश होगा, प्रकाश होगा, तो ज्ञान होगा, ाान होगा तो हमें जीवन प्राप्त होगा तो हमारी मृत्यु और अभिमान नहीं आएगा। यह हे पुत्रों! आज का वाक्य।

आज का वाक्य क्या कहता है कि हमारा हृदय सत्यता से भरा हुआ रहना चाहिए। जैसे परमात्मा का यह संसार रूपी जगत् एक क्रीड़ा में दृष्टिपात् आता है, एक–दूसरे से समन्वय होता हुआ संसार दृष्टिपात् आता है। एक–दूसरे में लय होता हुआ दृष्टिपात् आता है। इसी प्रकार सत्यता में हमारा जीवन ओत–प्रोत रहना चाहिए, सत्यमय जीवन होना चाहिए, सत्य ही मानव की आभा है।

यह है पुत्रों! आज का हमारा वाक्य। कल मुझे समय मिलेगा मैं आत्म–लोक में जाने की अगली पैड़ी, इससे ऊर्ध्व की पैड़ी कल उच्चारण करूँगा।

आज का वाक्य समापन होने जा रहा है, समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

६. षष्ठ अध्याय–हे मानव! सत्याचरण द्वारा मानव जीवन को पवित्र बना 07–07–1978

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनाहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की अनुपमता का वर्णन किया जाता है।

वह मेरा देव कितनास अनुपम है, वह कितना वरणीय है। उसी मानव को मानवता प्राप्त होती है, जो उसे वर लेता है। उसी को वह प्राप्त होने लगता है। इसीलिए हमारे ऋषि–मुनियों ने कहा है,'उस परमपिता परमात्मा को हमें वर लेना चाहिए।' जो मानव उसे वर लेता है अथवा उसका वरण कर लेता है, वह उसी के समीप आना प्रारम्भ हो जाता है।

इसीलिए आचार्यों ने कहा है कि उस परमपिता परमात्मा को वरण कर लेना चाहिए। जिस प्रकार यज्ञशाला में यज्ञमान अपने पुराहित को वरण कर लेता है, ब्रह्मा को वरण करता है, जब वह उसे वर लेता है तो उसका याग सम्पनन हो जाता है। इसी प्रकार हे मानव! तू अपने आन्तरिक याग को ऊंचा बनाना चाहता है, उसको पूर्ण–रूपेण दृष्टिपात करना चाहता है, तो तू अपने प्रभु का वरण कर लें और उसको वरण करके अपने अन्तर्हृदय रूपी गुफा में उसको स्थिर कर ले।

जब हृदय रूपी गुफा में उस परमपिता परमात्मा को तुम दृष्टिपात कर लोगे तो बेटा! उसे अपना स्वामित्व वरणत्व को प्रदान करते हो, तो तुम आत्म–याग को पूर्ण कर सकोगे। जैसे मानव बाह्य–यज्ञशाला मे अग्न्याधान करता है, मानव उसी प्रकार अपने हृदय में, अन्तर्गुफा में ज्ञान–रूपी अग्नि को जागरूक कर लेता है। जब वह ज्ञान–रूपी अग्नि जागरूक हो जाती है तो यह जो नाना होता इस मानव शरीर में है यह नाना प्रकार के साकल्य के द्वारा यज्ञशाला में हूत करने लगते हैं, देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

वे पाँचों ज्योतियाँ जागृत हो जाती हैं। इन ज्योतियों को हम जागरूक करना चाहते है। वे पाँच–अग्नि भी कहलाती है। बाह्य–जगत् में पाँच प्रकार के यागों का चयन होता रहता है। आन्तरिक जगत् में पाँच प्रकार की अग्नियों का स्वरूप मानव के समीप आने लगता है।

आज का हमारा वेद–मन्त्र क्या कह रहा है? आज मैं तुम्हें उसी स्थली पर ले जाने के लिये आया हूँ, जिस स्थली पर विद्यमान हो करके मानव अपनी आत्म–चर्चा करता है। वह कण्ठ और हृदय की चर्चा करता है। वह अपना वरणीय विषय बना लेता है। और उसको अपना वरण करके अपने और प्रभु में अन्तर्द्वन्द्व को दृष्टिपात नही करता। वह अनेकता को एकता के सूत्र में कटिबद्ध करने लगता है और जब अनेकता एकता के सूत्र में कटिबद्ध हो जाती है, तो मानव के हृदय में वह पञ्च अग्नि, पञ्च–ज्योतियाँ जागरूक हो जाती है। उन पांचों अग्नियों के प्रकाश में नाना सूर्य आ जायें परन्तु उसकों आच्छादित नहीं कर सकते।

मैं इससे पूर्वकाल में तुम्हें हृदय की चर्चा कर रहा था। हृदय का हम परिचय दे रहे थे। इस मानव के हृदय में क्या–क्या समाहित रहता है? जिसको हमें जानना हैं। इस मानव के हृदय में सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओत–प्रोत रहता है। परन्तु जब बाह्य और आन्तरिक जगत दोनो का समन्वय करने लगता है ।

मैं इससे पूर्व कण्ठ की आभा की चर्चा करना चाहता हूँ। मानव के हृदय से आगे चलकर के 'कण्ठ–चक्र' आता है। कण्ठ आता है जहाँ उदान प्राण रहता है। कण्ठ के ही भाग में उदान–प्राण रहता है। जब मानव इस शरीर को त्यागता है, तो उदान–प्राण के ही साथ में चित्त का मण्डल और ''पञ्च अबृहि'' और मनस्तत्त्व यह उदान–प्राण के समीप आते है। मन उच्चारण करता है। और उनके समीप आत्मा विद्यमान हो जाता है तो आत्मा इनको अश्व बना करके इस शरीर को त्याग देता है।

वही प्राण जिसे हम उदान कहते है वह कण्ठ के भाग मे रहता है, वह कण्ठ में रहता हैं। वह कण्ठ में आदान–प्रदान करता रहता है। शब्दों की रचना करता रहता है। वह उदान केवल यही नहीं करता है कि शरीर में से आत्मा चला जाता है, उसके ऊपर आरूढ़ हो करके। नहीं जब तक इस शरीर में वास करता है और कण्ठ के भाग में रहता है, यह अन्नादि को उदर में प्रदान करता है और यह रसों को लेकर कण्ठ को सजातीय बना देता हैं।

यह जो कण्ठ है इसमें एक–'चक्रिका' है। हमारे योगीजन जो योगाभ्यासी पुरूष होते हैं, वे जानते हैं कि कण्ठ एक चक्र कहलाता है। वह कैसा चक्र है जिसमें शब्दों की रचना होती रहती है। शब्द कण्ठ के भाग से मुखारबिन्द रसना में होकर के, वह बाह्य–जगत् को धारण करने लगता है। एक मानव अपने मचान पर विद्यमान है परन्तु वह कह रहा है अरे! मार्ग–वेत्ताओं यह मार्ग जा रहा है, ब्रह्मपुरी को मार्ग जा रहा है। मचान में स्थिर हुये जो शब्दों की रचना हो रही है, शब्दों के द्वारा जो मार्ग का प्रदर्शन कराया जा रहा है, मानव पथिक बन रहा है, शब्द को ग्रहण करके पथिक बन करके वह यथार्थ मार्ग को ग्रहण कर लेता है क्योंकि वाणी में, कण्ठ में यथार्थता होती हैं।

जब कण्ठ सजातीय हो जाता है, सत्यता से तो यह नारकिक स्थानों को स्वर्ग बना लेता हैं। यह कैसे स्वर्ग बनाता है? मुझे एक ऋषियों की सभा का स्मरण आ गया है। बहुत परम्परा की वार्ता हैं एक समय महात्मा दद्दड़ मुनि महाराज के यहाँ एक ब्रह्मवेत्ताओं की सभा हुयी। उन ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में महात्मा दद्दड़ मुनि महाराज से यह कहा जा रहा था, सोमकेतु ने कहा कि महाराज! मानव के शरीर के कण्ठ क्या है? कैसे यह मानव के शरीर में रहता है। बाह्य जगत् से इसका क्या सम्बन्ध है?

महात्मा दद्दड़ मुनि महाराज कहते है कि हे ब्रह्मवेत्ताओं! मेरे विचार में यह आता है कि यह जो कण्ठ है उसमें उदान–प्राण तो रहता ही है परन्तु यहाँ तरङ्गें आती हैं और तरङ्गों द्वारा शब्दों का निर्माण होता है और वे शब्द रसना के द्वार से होते हुए बाह्य–जगत् मे चले जाते हैं और बाह्य जगत् मे ये मानव को पथ–प्रदर्शन कराते हैं।

जितना भी तपा हुआ शब्द है, कण्ठ के उद्‌गार जब उत्पन्न होते हैं तो जिस स्थली पर विद्यमान होता है वहीं यह अपना प्रकाश कर लेता है। वह अपने प्रकाश से स्वतः प्रकाशित होता है। जैसे सूर्य की नाना प्रकार की किरणें उत्पन्न होती हैं और सूर्य अपने प्रकाश में ही संसार को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार जो कण्ठ को सजातीय बना लेता है, जो कण्ठ चक्रों को जान लेता है उसके कण्ठ में एक माधुर्यपन आ जाता है। उसके कण्ठ में सत्यता आ जाती है और वह जो सत्यता है वही मेरे प्यारे! सत् का भरण करती हुई वायुमण्डल का निर्माण करती है। उसी से वायु–मण्डल का निर्माण होता है। उसी से अन्तरिक्ष–मण्डल का निर्माण होता है और वह शब्द द्यु–लोक को चला जाता है।

हे ऋषिवर! एक वार्ता बहुत पुरातन काल में महर्षि दद्दड़ मुनि महाराज ने तो यहाँ तक कहा था कि यही कण्ठ है, जो परमात्मा की आभा बन करके रहता है। मानव का जो कण्ठ है और बाह्य जगत् में यह तीन प्रकार की श्रेणी कहलाती है। वे तीन प्रकार की श्रेणी क्या? ''भूःर्भुवः स्वः'', ये तीन श्रेणियाँ कहलाती हैं।

बेटा! भूः–लोक में शब्द जाता है, भुवःलोक मे जाता है और भुवः लोक में जा करके द्यु–लोक को प्राप्त हो जाता है। वही कण्ठ की रचना हो रही है। अब मेरे प्यारे! इस कण्ठ की जो रचना है वह बाह्य जगत् में नाना प्रकार के वायु–मण्डल में रहती है।

मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन किया था। महात्मा दद्दड़ मुनि महाराज यह कहा करते थे अपने शिष्यों के मध्य में विराजमान हो करके,''हे ब्रह्मचारियो! तुम सत्यवादी बनो।'' प्रत्येक आचार्य विद्यालय में यही कहा करता है ब्रह्मचारी से, कि तुम सत्यवादी बनो। माता अपने पुत्रों को कहती है कि पुत्र! तुम सत्यवादी बनो। जब योगाभ्यास के लिए गुरुजनों के समीप जाते हैं, ब्रह्मवेत्ताओं के पास, योगियों के पास तो यागेश्वर कहते हैं, योगी कहते हें कि हे मानव! तुम सत्य पर आरूढ़ हो जाओ। सत्य ही सत्य आरूढ़ करता है।

मेरे प्यारे! माता अपनी लोरियों का पान करा रही है परन्तु वह सत्य का उपदेश दे रही है। कहती है,''बालक! तुम सत्यवादी बनो।'' पिता अपने पुत्र को सत्यवादी बनाना चाहता है। उसके मन की यह कामना है, उसके हृदय की धारणा उसके कण्ठ में जो सजातीय शब्दार्थ है वह उसे सजातीय बनाना चाहता है, ऐसा क्यों होता है? कि पिता मिथ्यावादी है, पुत्र का सत्यवादी बनाना चाहता है। क्योंकि वह जो शब्द है वह मानव अपने अन्तःकरण से यह जानता है कि सत्य और असत्य है क्या? क्योंकि यदि नहीं जानता हुआ होता, सत्य उसकी आत्मा की पुकार नही होती, सत्य परमात्मा का हृदय नही होता, सत्यमय यह जगत् नहीं होता, तो पिता अपने पुत्र को सत्यता का उपदेश कदापि दे ही नही सकता था।इसी प्रकार वह सत्य मानव के कण्ठ में सजातीय रहता हैं।

तो विचार–विनिमय क्या कि यह जो कण्ठ है, हमें इस कण्ठ की उपासना करनी है, इस कण्ठ में हमें सत्यता के उद्गार देने हैं। सत्यता के उद्गार हमें आन्तरिक–जगत् में प्रवेश कराने है।

मैं विशेष चर्चा तुम्हें आज प्रगट करने नहीं आया हूँ। मैं व्याख्याता नहीं हूँ मैं तो केवल परिचय देने आया हूँ। वह परिचय क्या है? मेरे पुत्रो! एक समय जब इस वाणी और कण्ठ के ऊपर विचार–विनिमय हुआ तो आदि ब्रह्मा के पुत्र 'अथर्वा' और सोम हरिकेतु ऋषि, सोम ब्रह्मणी केतु ऋषि, सुकेता अनुवातक ऋषि महाराज, ये सब एक स्थली पर विराजमान हो गये। महात्मा अथर्वा ने कहा, हे ऋषियों! मै आज कुछ वेद का अध्ययन कर रहा था, उसमें कण्ठ और शकुन्तका की चर्चा आ रही थी, उसमें गौ–मेध–यागों का वर्णन आ रहा था, उसमें अजामेध–यागों का वर्णन था। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह क्या है?

ऋषियों ने महात्मा अथर्वा से कहा कि हे महाराज! चलो, हम तो इसको उत्तम तथा पूर्ण–रूपों से इतना नही जानते, अधूरा जानते है। चलो, आज ब्रह्मा, ब्रह्मकेतु ऋषि के द्वार पर चले। उन्होने वहाँ से प्रस्थान किया, ब्रह्मकेतु ऋषि के द्वार पर पहुंचे। ब्रह्मकेतु ऋषि ने उनके चरणों का स्पर्श किया। ब्रह्मकेतु ऋषि बोले कि हे ब्रह्मवेत्ताओं, ब्रह्म के जिज्ञासुओं! तुम्हारा क्यों इस प्रकार आगमन हुआ?

उन्होनें कहा, ''प्रभु! हमारा आगमन इसलिये हुआ है, आज हम कुछ वेद का अध्ययन कर रहे थे। वेद में कण्ठ की वार्ता आ रही थी, वेद में कुछ शकुन्तका की चर्चा थी। कुछ वैदिकता में ''अब्रहाः कृतिः कृताहन धनम जनः कृतिः लोकःगो–मेधाः''। गो–मेध की चर्चाएं , अजामेध की चर्चाएं और अहिल्या याग का वर्णन आ रहा है। प्रभु! हम वेद में जो अध्ययन करते हैं– ये सब कुछ क्या है?

मेरे पुत्रो! उस समय ब्रह्मकेतु ऋषि ने कहा, '' हे ब्रह्म के जिज्ञासुओ! तुम्हारी जिज्ञासा तो रहस्यमयी है परन्तु देखो! यह जो गो–मेध याग है, यह कण्ठ का याग है। जब गुरु के समीप ब्रह्मचारी प्रवेश करता है तो आचार्य उसे गो–मेध कराता है। उसे गो–मेध कैसे कराता है? मेध' और 'गो' दो शब्द है। उसे अन्धकार से प्रकाश में लाता है। अन्धकार से प्रकाश में लाना ही काम आचार्य का गो–मेध कहलाता है। 'गो' तो अन्धकार को त्यागना और 'मेध' को लाना और मेध' को लाना और मेध नाम कण्ठ को कहा गया हैं मेध कण्ठ को क्यों कहते है? क्योंकि कण्ठ को सबसे प्रथम सजातीय बनाते है।

उसके पश्चात हमारे यहाँ 'अजा–मेध याग' का वर्णन है। 'अजा' कहते हैं जो कदापि भी विजय होने वाला न हो। जो विजय नहीं होता उसको अजा कहते है। जो किसी से विजय नहीं होता उसको अजा (अजय) कहतें है। ऐसा अजा कौन होता है पुत्रो! ऐसा अजा वही होता है जो प्रभु को वरण कर लेता है, जो प्रभु को वर लेता है। कण्ठ में उस प्रभु की प्रतिमा को धारण कर लेता है। उसको धारण करना, उसको वरणा है, अजा–मेध में जाना है। क्योंकि वह मानव कदापि भी अजय नहीं होता । वह सदैव पूर्णत्त्व में रहता है, परमात्मा की छत्र–छाया में रहता है। वह ''कण्ठम् बृहिवृत्ताः'' उसके कण्ठ में नाना प्रकार की विद्या भरण होती हैं। नाना प्रकार की विद्याएं होती हैं और उन विद्याओं को धारण करके वह अपने में स्वतः प्रकाशित बना रहता है।''

मेरे पुत्रो! उन्होने कहा, ''महाराज! यह वाक्य तो यथार्थ है, परन्तु ये धाराएँ '' शब्दार्थांग सन्तअबृहि'''। उन्होने कहा कि महाराज! यथार्थता में कैसे आये? तो उन्होने कहा कि इसमें अनुसन्धान किया जाये। मुझे स्मरण आता रहता है, इन ऋषियों ने महात्मा अथर्वा की और ब्रह्मकेतु दोनों की सहायता से अपना अनुसन्धान–क्षेत्र बनाया। अनुसन्धान करने लगे। अनुसन्धान करते–करते इस शब्द विज्ञान पर वे कण्ठ के द्वार पर चले गये।

कण्ठ में जो शब्दों की रचना हो रही है, शब्द आ रहा है, शब्दों की रचना हुयी श्वास के साथ में शब्दों की रचना है, वाक्य के रूप में शब्दो की रचना हैं। आन्तरिक–जगत् में शब्दों की रचना है। स्वप्न अवस्था है, तो उसमें भी शब्दों की रचना हो रही है। वह सूक्ष्म अड्.कुरों को साकार रूपों मे भोगता रहता है। पत्नियों का निर्माण करता रहता है। वह चक्र एक ऐसा चक्र है, जिसको जानने के पश्चात मानव जो स्वप्न में साकार रूप है। उसका जागरूकता के समान साकार रूप बन जाता है।

इसी प्रकार उन्होंने यह जाना, उसके पश्चात उन्होंने यह जाना कि इसका बाह्य–जगत् से क्या सम्बन्ध है? तो बाह्य–जगत् में जब ये अन्तरिक्ष लोक, द्यु–लोक, भू–लोक इन लोकों में यह शब्द गति करता है।जब यह शब्द गति करता है तो अन्तरिक्ष की रचना हो जाती है, अन्तरिक्ष बनता है।

मेरे प्यारे! जिस काल काल में मिथ्यावादी पुरूष हो जाते है, राष्ट्रवादी राष्ट्रीय मिथ्यावादी हो जाते हें तो जानो, यह जो अन्तरिक्ष है यह मिथ्या के शब्दों में भरण हो जाता हैं और जब यह भरण हो जाता है तो वहीं शब्द मानव की अशान्ति का मूल कारण बनते है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि के रूप में यह समाज दैवी–प्रकोपों में परिवर्तित होता रहता है।

यही तो असत्य तत्व कहलाया जाता है। वेद के ऋषि ने, अथर्वा ने इस 'कण्ठ–चक्र' के ऊपर बहुत अनुसन्धान किया। अब जो शब्द मिथ्या उच्चारण कर रहा है। वह उसके कण्ठ में शब्द कहाँ से आयेगा? क्योंकि वहीं शब्द तो आना है जो उसने अन्तरिक्ष में त्याग दिया है, वहीं शब्द उसकी पड्.खुड़ियों में आता है, उसी की रचना हो रही है, उसी की रचना हो करके वैसा ही वह प्रतिपादन कर रहा है।

उसी प्रकार आज जब हम यह विचारने लगते है कि वास्तव में कण्ठ की रचना इस प्रकार की है। ब्रह्मचारी सुकेता ने, ब्रह्मा के पुत्र ने ब्रह्मकेतु की सहायता से ऋषि–मुनियों के मध्य में उन्होनें शब्द को, कण्ठ चक्र को वहाँ तक पहुँचा दिया जहाँ अन्तरिक्ष में, भू–लोक में, उनके ऊपरले स्वः लोकों में जहाँ वायु–मण्डल में वायु की तीन प्रकार की तरड्ग विद्युत से अग्नि, अग्नि से उनका मिलान होता है। मिलान हो करके वहाँ शब्द जब जाता है मानव का, तो तीन प्रकार के शब्द है।एक रजोगुणी होता है, तमोगुणी होता है और सतोगुणी होता है और एक सतोगुण में क्या जो केवल दर्शनों से गुँथा हुआ शब्द है।

जो मानव के दर्शनों से गुँथा हुआ शब्द होता है, धर्म में पिरोया हुआ जो शब्द होता है वह सीधा द्यु–लोक को प्रवेश कर जाता है। जो शब्द रजोगुणी, तमोगुणी होता है वह जो वायु है, उस शब्द का आकार ऋषि को उसकी चित्रावली में दृष्टिपात आने लगा। उनके चित्र जो वायुमण्डल में, तीन प्रकार की– इन्द्र, कृतिभा और सोमकेतु– ये तीन ही वायु है। ये वायु शब्दों का विभाजन करती रहती हैं।

स्वतः ही वायुमण्डल में शब्दों का विभाजन होता रहता है। जो यथार्थ शब्द हैं वे द्यु–लोक को जाते है, वे स्थिर हो जाते है। जो मिथ्यावादी शब्द है। रजोगुणी है, घृणित शब्द हैं वे इस अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो करके मानव के कण्ठ में उन शब्दो की पुररूक्ति होती है। पुनरूक्ति हो करके वही शब्द अन्तरिक्ष में जब छा जाते है, अन्तरिक्ष छायमान हो जाता है तो कहीं तो इस पृथ्वी से तरड्.गें, वे शब्द, भयंकर अग्नि बन करके जब मिलान करते हैं, तो पृथ्वी में एक 'बड़वानल अग्नि' बड़वानल नाम की अग्नि समुद्रों में प्रदीप्त हो जाती है। वह अग्नि मनुष्यों का विनाश प्रारम्भ कर देती है, उसको ''दैवी–प्रकोप'' कहते है।

कही अन्तरिक्ष से कहीं पृथ्वी में जो ज्वालामुखी होता है वह विराट रूप बना करके, कहीं उग्र रूप धारण करके ग्रहके ग्रह पृथ्वी के आँगन में, गर्भ में, समाहित हो जाते हैं। तो उसका परिणाम यह होता है, वे ही अनावृष्टि, अति–वृष्टि है, वही उसके भागों का, उसकी आभा केन्द्र बन करके राष्ट्र में, समाज मे, एक अशान्ति के मूल कारण बनते हैं।

मिथ्यावादी पुरूष नहीं रहने चाहिए। वेद के ऋषियों ने कहा है कि राजा का, राष्ट्र का, जो निर्माण होता है वह निर्माण मानव के कण्ठों से होता है। वह निर्माण क्यों होता है क्योंकि वह धर्म और मानवता की रक्षा करने के लिये, वह धर्म की रक्षा करने के लिये। जो राजा धर्म की रक्षा नही कर सकता – ऐसा राजा प्रभु ! हमें प्रदान न करें। ऐसा राजा नही चाहिये जो धर्म और मानवता की ओर वाणी की, शब्दों की रक्षा न कर सकता हो।

मेरे पुत्रो! राजा को वैज्ञानिक होना चाहिये, राजा तपस्वी होना चाहिये, राजा तपस्वी होना चाहिये जिससे राष्ट्र में रूढिवाद न हो जाये और यदि रूढिवाद बन गया, इस कण्ठ की भिन्न प्रकार की धाराएँ बनेंगी तो विचार नहीं मिलेगें, विचारों का मिलान नहीं होगा और जहाँ विवाद होंगे वहाँ रक्तभरी क्रान्ति होगी और जहाँ रक्तभरी क्रान्ति होगी वहाँ अशान्ति होगी और वहाँ राजा का राष्ट्र नहीं रहेगा।

हमारे यहाँ पुरातन काल मे वैदिक ऋषियों के ये वाक्य हैं। आज मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हमारा जीवन कण्ठ में होना चाहिए, सत्यवादी होना चाहिए, प्रत्येक मानव का जो गृह है, जिस गृह में सत्यता का पालन होता है, याग होते हैं, वेदों की

ध्वनियां होती हैं, कण्ठ से शब्द उच्चारण करने वाले पुरूष होते हैं, वह गृह स्वर्ग होता है और जिस गृह में मिथ्यावदी पुरूष रहते हैं, मिथ्या उच्चारण करने वाले रहते हें, वह गृह ही नारकिक रहता है।

इसीलिए हे मानव! तुम गृहों को स्वर्ग बनाने का प्रयास करो स्वर्ग कैसे बनेगा? जब तुम्हारे यहाँ 'गार्हपत्य' नाम की अग्नि की पूजा होगी। ''गार्हपत्य'' तुम्हारे जो गृह के पथ है, उन्हीं से हमारा बाल्य उत्पन्न होता है, बाल्यों में संस्कार आते हैं। कण्ठ से माता कहती है ''बालक तू सत्यवादी बन।'' पिता कहता है ''बाल्य तू सत्यवादी बन। हमारा वंश विचित्र रहा है।'' तो परिणाम? यह गृह एक सजातीय बन जाता है।

इसी प्रकार जैसे प्रत्येक गृह में सत्यता का प्रसार होगा और राजा सत्यता का आदेश देगा प्रजा को, तो राष्ट्र के राष्ट्र स्वर्ग बन जाते हैं। वहाँ समय पर वृष्टि होती है, अतिवृष्टि नहीं होती। वहा अन्तरिक्ष पवित्र होता है। अन्तरिक्ष में से शुद्ध–पवित्र झड़ियाँ लगी रहती हें नाना प्रकार की वनस्पतियां सुगन्धि देती रहती हैं और वही सुगन्ध मानव की प्रवृत्ति को ऊँचा बनाती है, वही अननादि मानव को पवित्र बनाती है। योगी जब मन को एकाग्र करता हे तो योगेश्वर बन जाता है। विवेकी पुरूष होते हैं उतना समाज और राष्ट्र पवित्र होता है, मानवता पवित्र होती है।

विचार–विनिमय क्या? ये सब कण्ठ–चक्र से संबंधित विचार हैं। ये कण्ठ से ही उत्पन्न होते हें। कण्ठ को इतना सजातीय बना लेना चाहिए, यह आत्म–लोक की एक पैड़ी कहलाती है। यह पगडण्डी है इसको जो अपना लेता है, वह आत्म–लोक की आभा को जानने में निकटतम चला जाता है। वह आत्म–लोक में, उसके प्रवेश होने वाला बन जाता है।

परिणाम क्या? महात्मा अथर्वा ने जब इस प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रों को, चित्रावलियों को निर्मित किया। वह शब्द अन्तरिक्ष में गति कर रहा है, वायु में जहाँ उनका विभाजन होता, वायु के तथा शब्दों के चित्र आने लगे। वह शब्द जो अन्तरिक्ष मे जा रहा था। भूः लांक मे जा रहा था भूवः लोक मे जा रहा था उन शब्दो के चित्र आने लगे जब चित्र आने लगे वे चित्रों को दृष्टिपात करने लगे।

तो उससे उन्हें वेद के वाक्य, वे आख्यायिकाएँ सिद्ध हो गईं कि वास्तव में वेद जो कहता है वह यथार्थ है। वेद का जो शब्द है वह मानव की गाथा ही नहीं गाता, वह प्रभु की गाथा गा रहा है। वह माता की गाथा ही नहीं गाता, माता के गुणों का वर्णन कर रहा है वह राष्ट्र का वर्णन नहीं कर रहा है, राजा की महत्ती विशेषता का वर्णन करता हैं इसी प्रकार सूर्य की महिमा का गान नहीं गाता, सूर्य की जो किरणें हैं, जो नाना गुणों को धारण कर रही हें उनकी गाथा गा रहा है। तो आओ मेरे पुत्रों! मैं कहाँ चला गया, मैं दूरी नहीं जाना चाहता हूँ।

आज का विचार–विनिमय क्या कह रहा हे पुत्रों! हमारा कण्ठ पवित्र होना चाहिए। जब कण्ठ पवित्र होता है तो हमारा मस्तिष्क भी पवित्र होता है। हमारे मस्तिष्क में नाना प्रकार की आभाएं कण्ठ–चक्र के ऊर्ध्व भाग में एक 'त्रिवेणी' स्थान कहलाया जाता है। त्रिवेणी कहते है। जहाँ गङ्गा–यमुना–सरस्वती का मिलान होता है। ये तीन नदियों का मिलान होता है जैसे पृथ्वी–मण्डल में तीन नदियों के मिलान को त्रिवेणी कहते हैं। इसी प्रकार योगीजन जो यथार्थ–वेत्ता, ब्रह्मवेत्ता पुरूष होते हैं वे ईडा, पिङ्गला, सुषुम्ना इन तीन नाड़ियों का मिलान त्रिकुटी में होता है और त्रिकुटी में मिलान जब होता है तो उसको त्रिकुटी कहते हैं।

पुत्रो! कौन स्नान करता है त्रिवेणी में? उसमें वही स्नान करता है जो आत्म–लोक में जाना चाहता है। जो आत्मा के लोक में जाना चाहता है, वह आत्मवेत्ता उसी त्रिवेणी में स्नान करता है। वह त्रिवेणी का जब स्नान करता है, वह कैसी त्रिवेणी है? जब त्रिकुटी में इस प्राण की धुकधुकी लगती है, तो ये तीन नदियों का प्रतिनिधि ज्ञान, कर्म और उपासना भी मानी गयी है। ज्ञान, कर्म और उपासना भी वहाँ होने लगती है।

ज्ञान हो जाता है कर्म का, उपासना का ज्ञान और ''ज्ञानाति यदम् बृहिः देव लोकाः।'' ज्ञान, कर्म, उपासना–ये तीन नदियाँ कहलाती हैं। इस ज्ञान, कर्म उपासना में स्नान करने वरले ब्रह्मवेत्ता कहलाते हैं। वे इस त्रिवेणी को जानते हें। वे इस भृकुटी को जानते हैं जिसको हम त्रिकुटी कहते हैं। उस ऊर्ध्वा भाग में जब इन तीनों का मिलान होता है, उससे ऊर्ध्वा भाग में दो कृतिकाएँ होती हैं। वे जो कृतिका हैं जब वे प्राण और मन की धुकधुकी लगती है, आत्मा का जब बृहत् होता है, वहाँ वे दोनों कृतिकाएं नृत्य करती हैं।

जब नृत्य करती हें तो वह जो ऊर्ध्व–मस्तिष्क में जो ब्रह्मरन्ध्र है उस ब्रह्मरन्ध्र की पङ्खुड़ियां गति करना प्रारम्भ कर देती है! वे इतनी तीव्र गति करती हैं योगी को जितना यह ब्रह्माण्ड है, जितना मैंने तुम्हें अब तक वर्णन कराया है वरणीय माना गया है। नाना प्रकार के जो मण्डल है, नाना जो आकाश गंगाएं हें उनमें जो मण्डल हैं, जितनी गति से ब्रह्मारंध्र गति करता है, योगेश्वर की आत्मा सर्व–ब्रह्माण्ड को प्रत्यक्ष दृष्टिपात करने लगती है।

ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व भाग में 'पिाद' स्थान कहलाता है। उस पिपाद–स्थान में जितनी भी यह ब्रह्मरन्ध्र की पंखुड़ियां गति करती हैं, पिपाद–स्थान से रस आना आरम्भ होता है और वह जो रस है वह ब्रह्मरन्ध्र से होता हुआ रसना के ऊर्ध्व भाग में आने लगता है। उसे ऋषिजन ''सोमरस'' कहते हैं।

वह सोमरस कहलाया जाता है। उस सोमरस को कौन पान करता है? बेटा! जो ब्रह्मरन्ध्र की गतियों को जानता है। जो ब्रह्मरन्ध्र में जो गति हीत है ब्रह्मारंध्र के चक्र की , वह चक्रिका कहलाती है। इसका ब्रह्माण्ड से सन्म्बन्ध है। यह ब्रह्माण्ड और मानव, ब्रह्माण्ड दोनों एक सूत्र में हो करके योगीजन उस आनंद का अनुभव करते हैं, ऋषिजन उस आनंद का अनुभव करते है, जिसको हम सोमरस कहते हैं। वह सोममय कहलाया जाता है जिससे मानव सोममय बन जाता है।

परमात्मा की महत्ता को दृष्टिपात करके, परमात्मा के ब्रह्माण्ड को आन्तरिक–जगत् के ब्रह्माण्ड से मिलान करता हुआ योगी योगेश्वर बनता है, वहाँ एक 'अद्भुत–गति' होती है और वह जो अद्भुत–गति है उसको जब ऋषिजन पान करते हैं तो सर्व–आत्मलोक क्या, यह ब्रह्म का जो लोक हे वह ब्रह्म का हृदय है, इस हृदय में यह समावेश होने के लिए तत्पर हो जाता हैं।

मेरे पुत्रों! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ, केवल परिचय देने आया हूँ। कल मै तुम्हें आत्मलोक में पहुँचा ही देने के लिये आऊँगा। मैं आत्मा की चर्चा, कल उसका परिचय दूँगा।

मेरे पुत्रो! आज का हमारा विचार–विनिमय क्या है? जम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हूये, कण्ठ की आभा को जानते हुये हम ब्रह्मरन्ध्र में हम त्रिवेणी के स्थान में प्रवेश करना चाहते है। 'त्रिवेणी' उसी को कहते है जहाँ गङ्.गा, यमुना और सरस्वती तीनों नदियाँ मिलान करती है। मानव शरीर में तीन नाड़ियाँ हैं – जो ईडा, पिङ्.गला, सुषुम्ना कहलाती है! त्रिवेणी के स्थान में योगी को त्रिवेणी–स्नान कराती है। वह स्नान हो जाता है। स्नान हो करके कृतिका जागरूक हो जाती है।

कृतिका जागरूक हो करके ब्रह्मरन्ध्र में गति आ जाती है। पिपाद स्थान से सोमरस गिरने लगता है, उसको ऋषि पान कर लेते है। ब्रह्मरन्ध्र का सम्बन्ध सर्व–ब्रह्माण्ड, जितने ये लोक–लोकान्तर गति कर रहे है। ये लोक–लोकान्तर उस ब्रह्मरन्ध्र वाले ऋषि के लिये दृष्टिपात करना खिलवाड़ बन जाता है। खिलवाड़ बन करके नाना, करोड़ों नाड़ियों का समूह ऊर्ध्वगति में क्रियाशील हो जाता है। एक–एक नाड़ी का सम्बन्ध 72–72 मण्डलों से होता है। करोड़ों नस–नाड़ियाँ जागरूक होती है, ब्रह्मरन्ध्र में और एक–एक नाड़ी क्या, एक–एक नाडी का 72–72 लोकों से समन्वय होता हैं।

मैं शेष चर्चाएँ तो कल ही प्रगट करूँगा। आज का विचार –विनिमय क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुये, अपने कण्ठ को सजातीय बनाये। हे मानव! तेरा कण्ठ यदि पवित्र बन जाये, तो वायु–मण्डल भी पवित्र बन जाये।

वायु–मण्डल जितना पवित्र होगा, उतने दैवी–प्रकोप नहीं होगे, उतने ही आधि–भौतिक प्रकोप नहीं होगे। परिणाम यह कि वायुमण्डल के पवित्र होने पर अन्तरिक्ष जब पवित्र होगा, तो ये अनावृष्टि, अतिवृष्टि नहीं होगी।

इसी प्रकार हे मानव! तू अपने जीवन को ऊँचा बनाने, मानव जीवन को पवित्र बनाने का प्रयास कर। संसार में तेरे आने का उद्देश्य यदि कोई है तो वह है तेरी पवित्रता, यह है तेरी ऊर्ध्वगति बनाना। यदि ऊर्ध्वगति संसार में आ करके नहीं बनती तो तू मानव नहीं कहलायेगा, तेरी मानवता उसी स्थल पर कुण्ठित रह जायेगी, अतः अपने क्रिया–कलाप में पवित्र बना रह।

आओ मेंरे पुत्रो! आज का विचार–विनिमय क्या? आज का हमारा विचार–विनिमय यह है कि हम अपने जीवन को ऊँचा बनाते रहें। कल बेटा! मैं इसकी चर्चा आगे की कड़ी में उच्चारण करूँगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

७. सप्तम अध्याय–आत्म–लोक मे प्रवेश 08–07–1978

जीते रहो!

देखाा मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव विश्व रचयिता जो महान् इस संसार में एक–एक प्रकृति के कण–कण में ओत–प्रोत है, उस महान् देव की महिमा का गुण गान गाया जाता है।

प्रत्येक वेदमन्त्र उसकी गाथा गा रहा है, ध्वनि से गा रहा है। वैदिक ध्वनि आ रही है जिसको पान करने वाले प्रातःकालीन अमृत को पान करके अमरावती को प्राप्त हो जाते है। क्योंकि उसे आचार्यो ने सुमन कहा है, उसको सोम्य कहा है। वह कैसा अमूल्य 'सोम्य' है? जो सोम की वृष्टि करने वाला है और उस सोम को मानव पान करता है। परन्तु वह सोम जो प्रातःकालीन प्रसाद के रूप में प्रदान किया जाता है।

प्रातःकाल होते ही एक प्रकाश आता है। वह प्रकाश मानव की बुद्धियों को तीक्ष्ण और महान् बनाता है। वह प्रकाश को जो संसार में, जो जागरूक रहता है उसको मानव पान करता है और जो सुषुप्ति में चला जाता है तो उससे वह प्रकाश चला जाता है।

मेरे पुत्रो! हमें जागरूक रहना चाहिये, जगाने वाला कौन है? जो जागता ही रहता है, वह निद्रा में नही जाता । वह सदैव जागरूक रहता है, ऐसा कौन है, बेटा! वह मानव जागरूक रहता है, जो प्रभु के प्रकाश को जानता है कि इस काल में प्रभु का प्रकाश आ रहा है। प्रातःकाल का समय है सूय्र उदय होने वाला है। इस संसार को तेजोमयी बनाया जा रहा है, रात्रि का अभाव बन गया, प्रकाश आ गया।

वह जो प्रकाश आ रहा है उसी प्रकाश में तो मानव सदैव जागरूक रहता हैं जो जागरूक रहता है वही तो प्रसाद प्राप्त करता है। तो इसीलिये प्रत्येक मानव को यहाँ जागरूक रहना हैं

प्रभु के राष्ट्र में जब रात्रि नहीं होती तो मानव को सुषुप्ति भी नहीं होती क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है। सूर्य उसके राष्ट्र में अस्त नहीं होता। पुत्रो! प्रकाश को प्राप्त करने के लिये उस प्रसाद को पान करना है जो प्रातःकालीन की बेला में बिखर रहा है। परमात्मा के राष्ट्र में सदैव प्रातःकाल रहता है, सुमन रहता है, अमृत की वृष्टि होती है।

वह कैसा अमूल्य मेरा प्रभु है, जो उसको जागरूकता में पान करता है, वह अमृत बन जाता है। वह अमृतमय बन करके अपने में सौभाग्यशाली स्वीकार करता हैं।

आज का हमारा यह वाक्य, यह प्रातःकाल की अग्नि हमें सड्.केत कर रही है। हे अग्नि! तू मित्र बन करके हमें प्रकाश देती हैं। हमारे इस मानव–शरीर को क्रियाशील बनाती है। हे अग्नि! तू आग्नेय है। तू कैसा आग्नेय है? तू देवताओं का दूत है तू देवताओं को, हवि बना करके देवताओं को तृप्त कर देती है। तू कैसी हवि बनती है? तू वैश्वानर बन रही हैं तू वैश्वानर बन करके इस विश्व को ज्योतिर्मय बना रही है।

मेरे पुत्रो! वह अग्नि है। प्रातःकाल का वह प्रसाद है। वह ''ज्ञानाति जन्मजं बृहिः वृत्त देवाः'' वह ज्ञानरूपी अग्नि है। इस ज्ञान–रूपी अग्नि का और बाह्य–अग्नि का जब मिलान हो जाता है तो मानव के जीवन में प्रकाश हो जाता है। अन्तःकरणीय प्रकाश जागरूक हो जाता है, अन्तःकरण की ज्योति जागरूक हो जाती है।

मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल विचार यह है कि प्रातःकाल में अग्नि से हवि बन करके प्रसाद–रूपों में प्रदान किया जा रहा है।जो मानव उसे पान करता है, अमृत है। जो सुषुप्ति में चला जाता है, वह अज्ञान में रहता है। तो प्रत्येक मानव को अज्ञान को त्याग करके ज्ञान के क्षेत्र में पहुँचना चाहिये।

आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें उसी आभा में ले जाना चाहता हूँ जहाँ मैं ब्रह्मरन्ध्र की चर्चा कर रहा था। उस ब्रह्मरन्ध्र में जाने के लिये हम तत्पर हो गये थे। मैं त्रिवेणी स्नान कर रहा था। जब हम त्रिवेणी का स्नान करते है, तो एक दिव्य रूप बन करके हमारे समीप आ जाता है। वह अपना ही एक मानवीय स्वरूप माना गया है। प्रभु का चित्रण माना गया है। जैसे मानव दर्पण में अपने को ही दृष्टिपात कर रहा है। दर्पण में कोई चित्र दृष्टिपात आता है। वह अपने में से ही तो आ रहा है।

इसी प्रकार जब हम त्रिवेणी का स्नान करते है, ज्ञान, कर्म व उपासना के क्षेत्र में चले जाते हैं, तो एक अनुपम प्रकाश आ जाता है। उसको योगीजन जानते है। योगीजन वह जो पाँच अग्नियों को जागरूक कर लेते है। त्रिवेणी के स्थान के ऊर्ध्व–भाग में मैनें दो कृतिकाओं का वर्णन किया। किसी काल में जब कृतिका भ्रमण कराते है तो उस कृतिका में यह विशेषता होती है। जैसे ईडा, पिड्.गला, सुषुम्ना, जैसे गड्.गा , यमुना और सरस्वती ये तीनों नदियाँ जैसे समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं और जब समुद्र में प्रवेश करती हैं तो अथाह समुद्र में उन नदियों का अपना अस्तित्व हो जाता हैं।

इसी प्रकार, ज्ञान, कर्म, उपासना के रूप में हो चाहे ईडा, पिड्.गला और सुषुम्ना के रूप में हो चाहे तमोगुण, रजोगुण एवम् सतोगुण के रूप में हो, जब ये तीनों नाड़ियाँ , तीनों नदियाँ ये नदी रूप बन करके कृतिका के –कृतिका उसे कहते हैं वे जो दो कृतिका हैं जैसे जिस प्रकार नदियों का मिलान समुद्रों से होता है, इसी प्रकार ईड़ा, पिड्.गला, सुषुम्ना का उनका अपना यहाँ आ करके अस्तित्व समाप्त हो जाता है और जो अस्तित्व समाप्त हो जाता है तो आगे वहीं धारा समुद्र रूप में प्रवेश करके जैसा मैंने इससे पूर्वकाल में वर्णन कराया था कि ब्रह्मरन्ध्र जागरूक हो जाता है। ब्रह्मरन्ध्र की जो पड्.खुड़ियाँ हैं वे ऐसे ही गति करने लगती हैं, जैसे नाना लोक–लोकान्तर अपनी–अपनी आभा में गति करते है, जैसे सूर्य गति कर रहा है वह अपनी आभा से गति कर रहा है। पृथ्वियाँ अपनी आभा पर गति कर रही है।

परन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसे यह प्रभु की माला हो। ये जो लोक–लोकान्तर गति करते है, कुछ ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रभु की माला हो और कैसी विचित्र माला है? वे एक–दूसरे की परिक्रमा के रूप में दृष्टिपात आ रहे है। परन्तु वह परिक्रमा ही नहीं अपनी–अपनी आभा में गति हो रही है। जेसे सप्तऋषि मण्डल ध्रुव की परिक्रमा करते है, परन्तु वे ध्रुव की परिक्रमा ही नही अपनी–अपनी आभा पर भी गति कर रहे है, वह परिक्रमा ही दृष्टिपात आती हैं। जैसे भिन्न–भिन्न प्रकार के मनके एक सूत्र में पिरों करके माला के रूप में दृष्टिपात आने लगते हैं इसी प्रकार लोक–लोकान्तरों की माला ऋषियों को इस ब्रह्मरन्ध्र में दृष्टिपात आने लगती है और जैसा मैने इससे पूर्वकाल में कहा, करोड़ों नस–नाड़ियों का ऊर्ध्वमुख हो जाता है।

ब्रह्मरन्ध्र में जाते ही प्राण, की मन की और आत्मा की धुकधुकी लगते ही वे करोड़ों रश्मियाँ जागरूक हो जाती हैं और वे करोड़ों रश्मियां एक–एक रश्मि में से 72–72 हजार रश्मियाँ उत्पन्न हो जाती हैं 72 हजार जो रश्मियां हैं, उनका प्रत्येक लोक–लोकांतर, आकाश–गड्गाओं से समन्वय हो जाता है। समन्वय होने के पश्चात यह ब्रह्माण्ड ऐसे दृष्टिपात आते हैं जैसे हम एक गृह में विद्यमान हैं। उस गृह का हम एक–एक कक्ष अपने में गणित कर लेते हैं। वह माला ब्रह्मरन्ध्र की माला ऋषि ही तो पान करता है, ऋषि ही तो धारण करता है, वह जागता रहता है, वह जागरूक रहता है।

विचार–विनिमय क्या है? इससे पूर्व एक पिपाद और अमृत का वर्णन चल रहा था। पिपाद और अमृत क्या है? ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व भाग में जहाँ ये नस–नाड़ियाँ जागरूक हो जाती हैं, वहाँ उसके ऊर्ध्व भागों में स्थित एक 'पिपाद' नामक स्थान हैं इस पिपाद–स्थान में अब ब्रह्मरन्ध्र पंखुड़ियाँ गति करने लगती हैं तो उनमें से रसों का स्वादन, रस आने लगता है जैसे मधु में से रस आने लगता है इसी प्रकार वह रस आता है। गति से वह सूक्ष्म बन जाता है, सूक्ष्मतम बन जाता है और उसको ऋषिजन आनन्द के रूप में अनुभव करते हैं।

यह वह आनन्द है जो आनन्द मेरे प्यारे! प्रभु की गोद में प्राप्त होता है। जो आनन्द क्षुधा वाले बालक को माता की लोरियों में प्राप्त होता है। जो आनन्द जब सुषुप्ति में प्राणी चला जाता है तो यह कहता है कि आज मैं ऐसी सुषुप्ति में चला गया। उस आनन्द को वह ग्रहण करता है। वह एक आनन्द ही आनन्द बिखेरने लगता है।

उस आनन्द में जाने के पश्चात मानव को कितना व्यापक बनना है? मैं बहुत पुरातन काल से एक विवेचना कर रहा हूं। वह आत्म लोक की विवेचना है। आत्मलोक हम किसे कहते हैं? जहाँ हम ब्रह्मरन्ध्र की पुनः स्थिति का वर्णन करते हैं। जहाँ अन्त और पुनः सृष्टि का वर्णन करके बाहुभ्याम में चले जाते हैं।

बाहुभ्याम किसे कहते हैं? ये जो दिशायें हैं ये बाहुभ्याम कहलाती है मानव दिशाओं को जानने लगता है। एक ऐसा विचित्र यह मानव शरीर बना हुआ है जब शरीर से ये आत्मा पृथक होता है, उस समय इसे आनन्द की प्रतीति होने लगती है। क्योंकि यह कर्म बंधनों का, यह कर्मों का एक बंधन है जो शरीर है।

प्रत्येक कर्म को व्यापक वाद में ले जाना है। प्रत्येक इन्द्रिय से जो कर्म होता है। उस प्रत्येक इन्द्रिय के कर्म को व्यापक बनाना है। प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु का और अपना मिलान करना है। उनमें मानव–तत्व को मानव दर्शन को पान करना है। जब आत्मा यह जान लेता है कि तू स्थूल शरीर नहीं है, तू तो एक चेतना है। तू चक्षु नहीं है, तू वाक् नहीं है तू घ्राण भी नहीं है और क्या है? तू घ्राण भी नहीं, चक्षु भी नहीं, श्रोत भी नहीं, वह कण्ठ और हृदय भी नहीं। तू क्या है?

एक रस रहने वाली चेतना है। जब तू इस शरीर से, इस मानव लोक से, शरीर से तू जब पृथक होता है तो आत्मा, तेरा जो लोक है, जहाँ तू वास करता है वहीं तेरा लोक कहलाया जाता है। इसके कारण यह मानव शरीर चेतनित बना रहता है। जब यह आत्मा मानव के शरीर में वास करता है, चेतना बनी रहती है, संसार का व्यापार कर रहा है। संसार का व्यापार चल रहा है। ऋण–बंधी संसार बना रहा है। हम एक दूसरे में ओत–प्रोत होने के लिये तत्पर हैं।

वह जो तत्परता है क्या है? वे आत्मा के कारण ही तो दृष्टिपात आ रही है श्रोत शब्दो मे जा रहे है । सर्व दिशाओ का ज्ञान उनके समीप है घ्राण मे जा रहे है परमाणुवाद ओर तरंगो का विज्ञान उसमे निहित है नेत्रो मे जा रहे है उसमे सर्व रूप कया ज्ञान है और उसका विज्ञान है हम नाभि मे जा रहे है संस्कारो की उपलब्धि को जागरूक कर रहे है । परन्तु वह उसी काल तक जागरूकता है जब तक इस मानव शरीर मे आत्मा विद्यमान है ।

जब तक आत्मा विद्यमान है आत्मा द्वारा गति हो रही है तब तक मानव कहता है यह जीवीत है तब तक मानव, मानवा को जीवीत कर रहा है वह जीवीत बन रहा है क्रियाशील बन रहा है व्यापार कर रहा है वायु मे उड़ान कर रहा है अन्तरिक्ष मे उड़ान उड रहा है सूर्य लोको की उड़ान उड़ रहा है मंगल की उड़ान उड़ रहा है चन्द्र लांको की उड़ान उड रहा है एक लांक नही कहीं आकाशगंगाओ मे गति कर रहा है कहीं वह बुध मे व शुक्र मे जा रहा है कहीं वह सूर्य की किरणो के साथ योगी बन करके वह सूर्य लांक की पैड़ी लगा रहा है ।

परिणाम क्या जब तक इस शरीर मे आत्मा विद्यमान रहता है । तब तक यह ब्रह्माण्ड एक ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है और जब यह आत्मा इस शरीर से पृथक होता है अपने साथ मे सूक्ष्म तन्मात्राओ को ले करके चला जाता है तो वह व्यापार चला गया । सूर्य सूर्य नही रहा जो किरणो से गति कर रहा था । वह गति नही रही लोक लोकान्तर भी दृष्टिपात नही आ रहे जो नेत्र रूप को को दुष्टिपात कर रहे थे जो इतने सूक्ष्मतम बन गये थे कि वह नेत्र उस संसार को दृष्टिपात करने वाले उनके पत्नी ,पुत्री,पुत्र यह सब खिलवाड़ हो रहा था। चेतना के साथ ही तो यह खिलवाड़ था वह जब तक विद्यमान है । तब तक चेतना बनी रहती है । आत्म चेतना के पृथक होते ही यह पृथक हो जाता है जिसको यह संसार सजातीय बना रहा था द्रव्य पति का द्रव्य पति आदर कर रहा था । उसको महता दृष्टि से पान कर रहा था । जिस योगी को यागेश्वर कह करके उसका व्यापक स्वरूप एक मानव बना रहा था । जिसके उपदेश मंजरियो का श्रवण करके मानव भगवान कह रहा था । प्रभु कह रहा था । वह प्रभुता कहां चली गयी

वह कहां थी प्रभुता ! आत्मा के साथ ही तो वह प्रभुता थी जब आत्म तत्व चला जाता है । तो उसक समय यह शरीर रह जाता है सम्बन्धी जो उसको पालन कर रहे थें । माता पालन कर रही थी। पिता शिक्षा दीक्षा का चिन्तन कर रहा था । आचार्य उसे शिक्षा दे रहा था। राष्ट्र का राष्ट्रीय बन करके राष्ट्र का पालन हो रहा थां । शव ाह जाता है तो कहते हैं कि इसे अग्नि मे दाह कर दो । अरे! स्वरूप को तुम समाप्त करते हो जो स्वरूप आत्मा के होते हुए चेतना मे पालन रूप मे था आत्म चेतना मे रहने के कारण वह क्रिया शून्य बन करके वह अग्नि के मुख मे परिणत करने लगे । मेरे प्यारे! व्ही तो अग्नि मे चला गया अग्नि ने उसका दाह कर दिया दाह कर दिया तो बेटा वह जो शरीर मे पार्थिव तत्व थे वे पार्थिव तत्वों मे प्रतिष्ठित हो गये और जो घ्राण थे जिसमे सर्वत्र परमाणु और तत्रगवाद का विज्ञान था। वह परमाणु प्राणेश्र रूपमे वायु मे परिणत हो गये।

जो आकाश बना हुआ था शरीर मे जिसमे हम भोजन पान करते है भिन्न प्रकार का अवकाश मे जा करके वह सूक्ष्म बन रहा था । संस्कार जागरूक बना रहे थे । मस्तिष्क से उसका निर्माण हो रहा थां। अवकाश भी चला गया वह अपने मे ही लय हो गया कयोंकि अपने स्वरूप मे प्रवेश कर गया है नेत्रो की ज्योति अग्नि मे प्रवेश कर गयी वह अपने अपने स्वरूप मे परिणत हो गये ।

परिणाम क्या हुआ इस आत्मा को जाना उस काल मे जाता है । जब इस मानव शरीर को और आत्मा को तुम दो वस्तु स्वीकार करोगे और यह कहोगे कि यह शरीर नही है । आत्मा तो एक चेतना थी वह चली गयी, कहाँ गयी? जो उदान–प्राण, जो चित्त का मण्डल कहता था वहीं चली गयी है, स्मृति भी चली गयी, उदान के साथ में वह स्मृति भी नहीं रही जो माता–पिता की जानकारी थी। जो पुत्री–पुत्रों की जानकारी थी वह स्मरण शक्ति भी नहीं रही।

मेरे पुत्रों! वह आत्मा के साथ में ही तन्मात्राओं के आंगन में चित्त के मण्डल में प्रवेश हो करके चली गयी विज्ञान में वह सब दृष्टिपात आ रहा था वह भी नहीं रहा। वह सब लय हो गया, एक दूसरे में परन्तु यह नहीं है कि वह समाप्त हो गया है, वह समाप्त नहीं हुआ है। उसका सूक्ष्म रूप बन गया है। तन्मात्राओं का सूक्ष्म रूप बन गया। जिन परमाणुओं से मानव शरीर चेतनित सा दृष्टिपात आता था, उसका रूपांतर हो गया, स्थूल नहीं रहा, उसका रूप अपने ही स्वरूप में परिणत हो गया।

मेरे पुत्रों वेद के ऋषियों ने कहा है कि मृत्यु का भी यहाँ अभाव बन गया है। मृत्यु नहीं है। संसार में मृत्यु का आभाव बन गया है। क्योंकि आत्म चेतना को जो जान लेता है, जो इस प्रकार का जो मैंने सप्त का वर्णन किया है। मैं सप्त होताओं का वर्णन कर रहा था। वे सप्त होता जो आहुति दे रहे थे, जो आहुति चल रही थी सूक्ष्म रूप बन करके एक व्यापक स्वरूप बन रहा था। आत्म लोक में जाने के लिये। आत्मा का लोक क्या है?

इस आत्मा को हम चेतना स्वीकार करके, ज्ञान स्वरूप स्वीकार करके इस संसार में आ करके हम कर्त्तव्यवादी बने। हम इसमें ममता में, ऐसी आभा में परिणत न हो जाये जिससे हमारे आत्म तत्व का अस्तित्व समाप्त हो जाये। हम अपने मृत्यु–स्वरूप को जानें। जिसको हम मृत्यु कहते हैं और एक जीवन स्वरूप को जानना चाहते हैं। दो स्वरूप मानव के समीप रहते हैं। उन दोनों स्वरूपों को जान करके मानव में एक पवित्र आभा का जन्म हो जाता है।

वह पवित्र आभा ही परमपिता परमात्मा की लोरियों का पान करा देती है। ज्ञान रूपी लोरियों का पान करा देती है। वह परम आनन्द का अनुभव करता है। वह आनन्द है और उस आनन्द को जो ग्रहण करता है वह अमरावती को प्राप्त हो जाता है।

आओ! मेरे प्यारे! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। तुम्हें यह वर्णन कराने के लिये आया हूं कि आत्म लोक में प्रवेश करना चाहते हैं। आत्म लोक क्या है? लोक कहते हैं जहाँ वास होता है। यह मानव शरीर आत्मा को लोक है। परन्तु यह लोक उस काल में है, जब इसका विज्ञान–स्वरूप तुम्हारे समीप हो। विज्ञान स्वरूप इसका व्यापकवाद यह सूक्ष्म सा पिण्ड जो मानव स्वीकार करके नाना प्रकार के काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के आंगन में प्रवेश कर जाता है तो यह संकीर्ण बन जाता है। वह संकीर्णता नहीं रहनी चाहिये। मानव लोलुपता में वह संकीर्ण नहीं बनना चाहिये।

इस मानव शरीर को व्यापकवाद स्वीकार करके, आत्म लोक स्वीकार करके और प्रत्येक वस्तु सामान्यता में रहे। कर्त्तव्यवाद की आभा जागरूक रहनी चाहिये। कर्त्तव्यवाद की आभा तब तक रहती है जब तक मानव प्रत्येक इन्द्रिय के स्वरूप को जानता है। प्रत्येक इन्द्रिय के स्वरूप को जब तक नहीं जाना जाता, जब तक वह कर्त्तव्यवादी बन ही नहीं सकता और जब इन्द्रियों के स्वरूप को नहीं जाना जायेगा तो अधिकार ही अधिकार पुकारने लगोगे। अधिकार ही अधिकार रह जायेगा। वह अधिकार जो है वह अनधिकार कहलाता है।

वह अधिकार ही अनधिकारता में परिणत होता है। परन्तु हे मानव तू अधिकार ही क्यों पुकार कर रहा है? तू अधिकार की पुकार न कर। तू कर्त्तव्य का पालन करेगा तो तेरा जो मनोवांछित जो भोग है वह तुझे स्वतः प्राप्त हो जायेगा। तेरा कर्म हैं कर्तव्यवाद, तेरी आभा है कर्तव्यवाद।

निष्कर्ष जिसमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं है। वह जो कर्म है, वह जो आभा है वह ही तेरा 'निष्काम कर्मयोग' कहलाता है। वह निष्काम कर्मयोग 'इदन्नमम्' यह मेरा नहीं है, ये सब किसी का है, मैं किसी की गाड़ी में विद्यमान हूं और वह गाड़ी जब मैं लक्ष्य पर चला जाऊंगा, गाड़ी मेरे से भी पृथक हो जायेगी।

इसी प्रकार, हे मानव! यह शरीर है और रथी इसमें आत्मा विद्यमान है इसका जो लक्ष्य है ब्रह्म को प्राप्त करना है। यह गाड़ी मार्ग में जा रही है, ब्रह्म इसका लक्ष्य है। ब्रह्म के द्वार पर जा करके आनन्द ही आनन्द, यह गाड़ी स्वतः हमसे पृथक हो जायेगी।

यह है पुत्रों! आत्मा का लोक जिसको प्रत्येक मानव को जानना है। प्रत्येक मेरे बाल्य, मानव वृन्द को जानना है। जिससे मानव समाज ऊंचा बनता है। मानव समाज में एक महत्ता आती है, जिससे प्रभु का जो रचाया हुआ जगत है, यह सुन्दर और पवित्र बतना रहे। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो क्या होगा? यह भोगना तो तुम्हें ही है। भोगवाद के क्षेत्र में चले जाओगे। इसीलिए अमृत को ही पान करना है। वह आनन्द है, वह महान् है, वह पवित्र है, वह अखण्ड करने वाला है। वह समापन नहीं होता।

आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है? मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूं। विचार यह देने के लिए आया हूं कि हमें आत्मलोक में जाना है, जहाँ हमें सदैव जागरूक रहना है। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में जब रात्रि नहीं होती तो सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है, उस प्रकाश में जाने के लिये हमें प्रयास करना है।

यह मानव शरीर आत्मा का लोक है। आत्मा इसमें वास करता है कब तक? जब तक प्रत्येक इन्द्रिय के व्यापक रूप को हम जानते हैं। व्यापक रूप समाप्त हो गया तो इसमें यह रथी नहीं रहता। यह कार्मों का क्षेत्र बन जाता है। वह कर्म फलों का क्षेत्र बन करके कर्म अर्थात् कर्त्तव्यवाद से ही प्राणी है वह भाग्य की कल्पना करते रहते हैं। वह भाग्य को ही पुकारते रहते हैं। अरे मानव! तुम भाग्यवादी क्यों बनते हो! तुम कर्त्तव्यवादी बनो। कर्त्तव्यवादी ही परायणता को प्राप्त होता है, वह प्रभु का दिग्दर्शन है। वह अपना मानव दर्शन है। तुम अपने में ही अपनेपन का दर्शन करने वाले बनो, वह मानवीय दर्शन जो चित्रों में प्राप्त होता है।

आज का विचार विनियम क्या? हम परमपिता पमात्मा की आराधना करते हुये, महापुरूष एकान्त स्थली में चिन्तन करते रहे हैं? इस आत्मा को जानने के लिये। इतना गहन यह विषय है। इसके लिये मानव तपस्या करते है। रेवक मुनि महाराज 101 वर्ष तक गाड़ी के नीचे ही अपने जीवन को व्यतीत करते रहे, महाराज इन्द्र प्रजापति के यहाँ जा करके 101 वर्ष तक तपस्या करते रहे। मुझे स्मरण रहता है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस आत्मलोक के लिए 84 वर्ष तो मौन रहे, वे वाक्य उच्चारण नही करते थे, चिन्तन ही चिन्तन चलता रहता था।

इस आत्मलोक को विजय करने के लिये, जानने के लिये इन चक्षुओं से संसार को सुदृष्टिपात किया जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रायः ऐसा क्रिया–कलाप उनके जीवन में चलता रहा। अरे! चक्षु जब अपने मित्र बन जाते हैं, अग्नेय अपने मित्र बन जाता है तो कौन किसका हिंसक? कौन हिंसा करता है किसी की? सर्पराज क्या, सिंहराज क्या–ये सब उस आत्मवेता के चरणों में ओत–प्रोत हो जाते हैं।

सर्पराज सर्प नहीं रहता, वह इस महापुरूष की पूजा कर रहा है। सिंहराज आता है आत्म–ज्ञान का आत्मा से मिलान ही करके। वह सिंहराज भी इस महापुरूष की पूजा कर रहा है। पूजा का अभिप्राय यह कि जिससे हृदय में से सुगन्धि उत्पन्न हो रही है, सिंहराज भी अपने में स्वीकार करता है। अरे! तू भी तो ऐसा ही आत्मा था। सर्पराज भी यह चिन्तन करता है कि तू भी तो ऐसी ही आत्मा था। तू कर्म करता–करता हिंसक बन गया, तू कर्म करता–करता प्राणियों का भक्षण करने लगा। कहाँ? यह भक्षण रूप बन गया प्राणी। आत्मा भक्षण रूप बन गया। जहाँ वह आत्मलोक में जाने वाला था, रथ को स्वीकार कर लिया।

वह रथ भी अधूरा बन गया है जिस रथ को तुझे पान करना था। यह मानव का शरीर एक ऐसा रथ है जो पूर्ण–रूपेण है, परन्तु और जितनी भी योनियां हैं वे सब कोई न कोई अंगहीन हैं, कोई न कोई रथ अंगहीन नहीं है। तो इसलिए वह अपने विकास को भी प्राप्त नहीं हो रहे। कोई हिंसक बन गया, कोई महा हिंसक बन गया कोई विष को पान कर रहा है, कोई विष को त्याग रहा है। कहाँ तक बन गया यह?

यह आत्मा, यह आत्मा का कितने प्रकार का रथ है, ये कितनी योगियां हैं संसार में? असंख्य योनियां हैं। ये सूर्य लोक से आ करके आत्मा यहाँ आ गया, इस रथ को अपना लिया उसने। ऐसे रथ को अपना लिया जहाँ हिंसा बन गया।

परिणाम क्या? मेरे पुत्रों में विचार यह दे रहा हूं कि हे मानव! तू अपने रथ में विद्यमान है। तेरा रथ पूर्ण रूपेण है। इसमें तू हिंसक न बन, तू भक्षक न बन, तू रक्षक बन और रक्षक वह बनता है जो अपनी ही स्वतः रक्षा करता है, दूसरों की रक्षा करना जानता है। जो अपनी रक्षा नहीं करता वह दूसरों की रक्षा क्या करेगा?

पुत्रों! आज का हमारा वाक्य! अपनी रक्षा क्या है? अपने आत्म लोक को जानना है। आत्मलोक को जानना ही अपनी स्वतः रक्षा है। उसी में कर्तव्यवाद है, उसी में मानव–वाद है। जब आत्म लोकी प्राणी बन जाते हैं। तो उनको राष्ट्र की भी आवश्यकता नहीं।

कौन किसके ऊपर शासन करेगा? जब मानव अपने–अपने रथ के ऊपर शासन कर रहा है। प्राणी–प्राणी अपने ऊपर अपना मानवीय दिग्दर्शन कर रहा है। कर्त्तव्यवाद में चल रहा है तो कौन कर्त्तव्य वादियों पर शासन कर रहा है। अरे! शासन तो उन प्राणियों पर होता है जो कर्त्तव्य–विहीन होते हैं। जो अधिकार ही अधिकार पुकारते हैं। रजोगुणी, तमोगुणी बन रहे हैं। राष्ट्र तो उनके लिये ही होता है। महापुरूषों के लिए राष्ट्र नहीं होता। वे राष्ट्र के लिये महापुरूष होते है। राष्ट्र की प्रणाली दे करके चले जाते है। राष्ट्र शिक्षा दे करके चले जाते हैं। परन्तु राष्ट्र के क्षेत्र में वे नहीं होते– राष्ट्र के क्षेत्र से ऊर्ध्व में होते है।

मेरे पुत्रो! यह आज का विचार–विनिमय क्या? हम आत्म–लोक में प्रवेश करें। आत्मा का लोक क्या है? जहाँ मेरे पुत्रो! यह राष्ट्र नहीं रहता, हिंसक नहीं रहता। हिंसक भी पूजा कर रहा है, राष्ट्र भी पूजा कर रहा है। यह है आज का हमारा वाक्य।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय, कि हम आत्म–लोकी बने। आत्मा के ऊपर मुनिवरो! अपना अधिपत्य करते हुये, आत्म–लोक में कर्त्तव्यवादी महान–वादी बन करके इस रथ में रथी इसमे विद्यमान है। इस रथ को जोतना और जैसे सात पैड़ियाँ तुम्हें आत्म–लोक की वर्णन की है।

अब पुत्रो! मुझे समय मिलेगा शेष चर्चाएँ मैं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन–पाठन होगा।

८. अष्टम अध्याय–संकल्प–शक्ति–आर्य देवी के अखण्ड सतीत्व का महत्व 21–04–1979 सुबह

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद–वाणी में उस महामना देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है।

हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुये कहा था कि सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान के काल तक नाना वैज्ञानिक हुये, नाना ब्रह्मवेत्ता हुये, परन्तु कोई मानव ऐसा नही हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध करने वाला हो क्योंकि परमपिता सीमा से रहित है, वह सीमा वाला नही है। मानो अल्पज्ञ जो प्राणी है वह बेटा! उसकी प्रतिभा अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध नहीं कर सका।

हमारे यहाँ विज्ञान ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है। ज्ञान और योग भी उनके मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है। यहाँ नाना प्रकार की मेरी पवित्र माताएँ ऐसी महनत्ता को प्राप्त होती रही है जिनके जीवन में सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता था, जिनके जीवन में योगश्चर रहता था। मानो ! वे योगी यौगिकता को चरने वाली मेरी पुत्री, मेरी नाना माताएँ, इस प्रकार की हुयी है।

मुझे बेटा! नाना वाक् स्मरण आते रहते है। चाक्राणि का जीवन काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में वे वेदों का अध्ययन करती थी, वेदों की उड़ान उड़ती थी। एक वेदमन्त्र स्मरण आता, उसके ऊपर कई–कई समय चिन्तनशील हो जाती और मन्थन करती।

एक समय चाक्राणि अपने गुरु 'श्वेणकेतु' के आश्रम में जब अध्ययन करती थी, श्वेणकेतु ऋषि महाराज मुद्गल गोत्रीय कहलाते थे। मुदगल गोत्र के जो ऋषि थे वे बेटा! वृद्ध नहीं और युवा भी नही थे। वे सदैव इस वेद की पवित्र धारा में गति करते रहते थे क्योंकि उनकी आयु 340 वर्ष की थी, जब वे चाक्राणि उनके द्वारा अध्ययन करती थी। इससे हमें यह प्रतीत होता है कि प्रभु का जो मनन करता है, प्रभु का जो चिन्तन करता है, ज्ञान और विज्ञान की जिसकी पराकष्ठा होती है, उनको वृद्धपन नहीं होता। उसमें वृद्धपन आता ही नहीं। वे अपने को अपने में ही आभा में दृष्टिपात करते रहते है।

बेटा! तो चाक्राणि अपने पूज्यपाद गुरुदेव श्वेणकेतु ऋषि जी के चरणों में ओत–प्रोत हो करके अपना अध्ययन करती थी आचार्य ने उन्हें एक वेदमन्त्र स्मरण कराया। प्रातःकाल हुआ, प्रातःकाल होते ही चाक्राणि अपनी आभा में गति करने के लिये आश्रम में दूर अध्ययन करने लगी। जब अध्ययन करने लगी, गान गाने लगी। उद्गाता के रूप में गाने लगी ''चित्रम् रथाः दिव्याम् देवत्यम्'' वे चित्त के ऊपर वेदमंत्र था ''चित्रम् देवानाम मनो कृतम अस्ति दिव्यम लोकाः'' मेरे प्यारे ! उनको चित्त के ऊपर एक वेद की आख्यायिका स्मरण आ रही थी, उसका उद्गान गा रही थी। ऐसी मधुर वाणी से तन्मय होकर गाती बेटा देखो ! सर्पराज अब उनके चरणों की वन्दना कर रहा था।

उसमें भय नाम की कोई वस्तु नहीं थी, क्योंकि भय क्या था? जब एकोकी सूत्र में ही ब्रह्माण्ड है तो चाक्राणि गान गा रही है। सिंहराज आकर विद्यमान हो गये। उद्गान गाया जा रहा है और भी हिंसक प्राणी आ करके विद्यमान हो गये, उनका गान प्रारम्भ हो रहा है, मेरे पुत्रो! हिंसक–हिंसक नही रहता।

उस समय कन्या की 12 वर्ष की आयु थी और 12 वर्ष की आयु मे जब वह गाना गा रही थी तन्मय होकर के, अन्तर्हृदय से, अन्तरात्मा से, अन्तःप्रवृत्तियों से, मेरे पुत्रो! उसका बाह्य–जगत बन रहा था। बाह्य–जगत जब बन रहा था तो उनको कौन श्रवण कर रहा था? हिंसक प्राणी। क्योंकि हिंसक प्राणी इसलिये उद्गीतों को ग्रहण करते हैं, क्योंकि उनमें हिंसा नहीं होती। जिनमें कल्पना नहीं होती, जिन विचारों में स्वार्थ भावना नहीं होती, जिसमें स्वार्थ परता नहीं होती है, उनको हिंसक प्राणी ग्रहण करता हैं। क्यों करता है? क्योंकि वह हिंसक शब्दों को ग्रहण्ण नहीं करता, हिंसा–चिन्तक शब्दों को ग्रहण नहीं कर रहा है। वह चाहता है, उससे तेरा विच्छेद हुआ है, तू उस देव की, उस अन्तरात्मा की, उस देव प्रभु की महिमा का गुणगान श्रवण कर।

मेरे पुत्रो! चाक्राणी इसी प्रकार अध्ययनशील थी। उसकी अध्ययन की प्रतिक्रियाएँ आभा मे गति कर रही थी। परिणाम, मेरे प्यारे ! उनके पूज्य गुरुदेव भ्रमण करने के लिए प्रातःकाल गति कर रहे थे, तो कन्या को उन्होंने दूर आराम से अध्ययन करते हुये दृष्टिपात किया। तो आश्चर्य में हो गये, ऋषि मौन हो करके अपने मन में चिन्तन करने लगे, यह कैसी प्रिय विदुषि है? यह कैसी प्रिय है जिसके हृदय में हिंसा का एक विचार भी नही आ रहा है। हिंसक प्राणी समीप हैं, वे प्रभावित नहीं है, वे प्रभावित नहीं कर रहे है। अहिंसा ही उसका आभूषण बन गया हैं।

जब ऋषि ने यह दृष्टिपात किया जो आश्चर्य मे हो गये। कन्या का अध्ययन समाप्त हुआ तो बेटा! ऋषि पूर्व ही अपने आश्रम में प्रवेश कर गये। जब कन्या का प्रवेश हुआ तो ऋषि ने मन ही मन में उस कन्या का चरणाबिन्दु सह्रदय और अन्तर्हृदय में नमस्कार किया कि धन्य हो। इस प्रकार का चिन्तन और मनन तो देवत्व का होता है। मानव देवता बन जाता है, वायुमण्डल उसके अनूकूल बन जाता है और वह महान बन जाता है।

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे कुछ प्रेरणा दे रहे है। उस प्रेरणा के आधार पर मैं अब एक विदुषी की चर्चा और प्रकट करूँगा। उसके जीवन में सदैव अग्नि ही अग्नि प्रवेश होती रही। अग्नि मे ही सदैव उसका जीवन रहा। मेरे प्यारे! त्प ही तप उसके जीवन काण्ड बन गया। मेरे प्यारे मै आज चाक्राणि गार्गी की विवेचना, बाल्यकाल की चर्चा की। गार्गी के बाल्यकाल का नाम 'विलुक्षणी' कहलाया जाता है। विलुक्षणी का अभिप्राय है, वह जो विलक्षणता को प्राप्त होती है। आचार्यो ने उनका नाम विलक्षणी उच्चारण किया और विलुक्षणी उच्चारण करके उसको सम्बोधित करते थे।

बेटा! देखो उनके जीवन का अध्याय गान में रहता था। ऐसे गान में रहता था कि उसे वस्त्रों का भी ज्ञान नहीं रहता था। वह यह जानती थी कि वेद–मन्त्र में अध्ययन यौगिक आभा में कि यह दशा ही मेरा आभूषण हैं पृथ्वी मेरा आसन बन गया है और अन्तरिक्ष मेरा ओढ़ना बन गया है। वह इस प्रकार की मनोभावना 'ब्रह्म मृत्युः देवाः चरिष्यामि।' ब्रह्म सभा मे, ब्रह्म देवताओं में, वे देवताओं की सभा में सुशोभनीय होती है। देवतागजन उसकी पूजा करते है। देवतागजन बेटा! उसका आह्वान करते हैं और उसकी आभा में वे सदैव रमण करती रहती थी।

आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें महानन्द जी की एक उस प्रेरणा के आधार पर एक वाक्य प्रगट कर रहा हूँ। मैं तुम्हें यह त्रेतायुग की चर्चा कर रहा था। सतयुग के काल में एक चाक्राणि और हुई जिसका नाम 'स्वाकृति' था। वह 'देवत्व ऋषि' महाराज की कन्या कहलाती थी। परन्तु यह मैं तुम्हें उस कन्या की चर्चा कर रहा था जो त्रेता के काल में थी।

अब मैं मुनिवरों! तुम्हें उस काल में ले जाना चाहता हूँ जिस काल में हमारे यहाँ विदुषि बन करके, तपस्विनी बन करके अपनी निष्ठा में अपने को, अपने प्रभु को अपने में स्मरण करने वाली का संकल्प कैसा होता है?

मैंने आज तुम्हें संकल्प की चर्चा की, मन के द्वारा बलवती बन करके अपने त्याग और तपस्या का जो प्रतिपादन मानव के समीप, मानव प्रतिपादन करने लगता है और वह क्रिया में आ जाता है तो उसका कितना उज्ज्वल प्रभाव होता है, दैत्य अशुद्ध विचारों वाला, उस मानव को पामर करना चाहता है, परन्तु हो नहीं पाता। मेरे पुत्रो! उसका प्रभु साक्षी होता है।

मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है जब हस्तिनापुर के क्षेत्र में अग्नि–काण्ड का प्रवाह, अग्नि प्रदीप्त होने लगी विचारों की, एक दूसरे को नष्ट करने की। ऐसा क्यों बना, ऐसा क्यों होता है?

बेटा! यह जो राष्ट्रीय पद्धति है, इस राष्ट्रीय पद्धति में जब स्वार्थपरता आती है। हमारे यहाँ राष्ट्रीय स्वार्थपरता आयी। सबसे प्रथम मानो देखो यह कैकेयी के विचारो मे आयी ,कैकेयी के विचारो मे , ऋषि मुनियो ने विचार तो कुछ और दिये परन्तु स्वार्थपरता आ गयी विचारा नही उसके पश्चात यही स्वार्थपरता देखो ,महाभारत के काल में गुरु द्रोण के समीप आयी। इससे पूर्व महाभारत के काल में कोई स्वार्थपरता नहीं थी।

निःस्वार्थ कैसा, देवव्रत ब्रह्मचारी अपने पिता के संस्कार के लिये त्याग कर रहा है कि मैं अपने पिता की आज्ञा का पालन करूँ। यह स्वार्थपरता 'शान्तनु' में आयी। महाभारत का यही तो मूल कारण बना है। जो स्वार्थपरता शान्तनु के हृदय में आयी। शान्तनु के हृदय में यदि यह कामना की, वासना की स्वार्थपरता नहीं आती तो यह महाभारत का सड्.ग्राम नहीं होता। क्योंकि 'शुद्धाम देवामन जकृति देवाः।'

यदि निःस्वार्थ हो करके 'अक्षुद्र' नदी के तट पर रहने वाला यदि शान्तनु का संस्कार कर देता तो यह भावना जब भी नहीं आ सकती थी। परन्तु स्वार्थ आ गया, स्वार्थ किसमें आया? 'शान्तनु' में तो स्वार्थ वासना का आगमन हुआ और अब तो नदी के तट पर रहने वाला 'अक्षूद्र' था, उसके मन में यह भावना आ गयी कि सन्तान को द्रव्य होना चाहिये, राष्ट्र होना चाहिये। यह स्वार्थपरता उसके द्वारा आ गयी। यदि वह निःस्वार्थ कन्या का संस्कार कर देता और शान्तनु में वासना नहीं आती तो बेटा! महाभारत संग्राम जब भी नहीं होता।

जिन विचारों से जिस–जिस कार्य को हम प्रारम्भ करते हैं। वे विचार अन्तिम तक बने रहते है। यह विचार का वाक्य है, यह एक मनस्तत्त्व की धारणा है। मुनिवरो! देखो देवव्रत ने पिता का संस्कार कराया, वे निःस्वार्थ बने रहे, संकल्पवादी बने। पुत्र संस्कारवादी हे, पिता वासनावादी बन गये। मेरे प्यारे ! इससे राष्ट्र में नष्ट–भ्रष्टता आ गयी।

मैनें बहुत पुरातन काल मे इस संस्कार को दृष्टिपात किया है। हजारों वर्षो से बेटा! यह संसार इस स्मरण–शक्ति के रूप में मेरे मस्तिष्क में विद्यमान हैं। मुझे यह प्रतीत है जिस काल में, जिन गृहों, जिस राष्ट्र में जहाँ वासना की स्वार्थपरता आ जाती है जहाँ पद की स्वार्थपरता आ जाती है, जहाँ राष्ट्र भोगने की स्वार्थपरता आ जाती है, विधाता,विधाता को नष्ट करने वाला बन जाता है तो जानो कि वहाँ आज नहीं तो कल नाश हो जायेगा, वह कुटुम्ब भी नष्ट हो जाता हैं।

मेरे पुत्रो! आओ मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। यह वाक्य कितना व्यापक बन गया। मुनिवरो! देखो कौरव और पाण्डव, पाण्डव पुत्रों और धृतराष्ट्र पुत्रों में आन्तरिक–अग्नि प्रदीप्त हो गयी और उस अग्नि प्रदीप्त होने का मूल कारण कहाँ तक बना? राज्य सभा में महाराज दुर्योधन विद्यमान है, एक स्थली पर जरयोधन विद्यमान हैं एक स्थली पर भीष्म जी विद्यमान है और एक स्थली पर गुरु द्रोण विद्यमान हैं। महाभारत के संग्राम का दूसरा मूल कारण गुरु द्रोण बन गया था, घृणा का । परन्तु मैं इन महान् आकृतियों की चर्चा विशेष नहीं करूँगा।

मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि महाभारत के काल में मुझे वह काल जब स्मरण आता है, कुछ दुःखित होना ही पड़ता है। जिन प्रवृत्तियों में ऐसी वासना, ऐसी विचारधारा आती है कि यह क्या हो गया? कितना ऊँचा विज्ञान? कितने ऊँचे आत्मवेत्ता, कितने ऊँचे विचारवान पुरूषों का ह्रास हो गया? मेरे पुत्रो! कितना विज्ञान, भगवान कृष्ण जैसे महापुरूषों का अस्तित्व समाप्त हो गया था। कृष्ण जी के द्वारा एक–एक यन्त्र इस प्रकार का था कि दिवस की रात्रि बन जाती थी और रात्रि का दिवस बन जाता था। ऐसे–ऐसे यन्त्र, जिसके समीप ऐसे संकल्प के ऐसे यन्त्र जो थे। यन्त्र को वायु में त्याग दिया और जिस प्राणी के लिए यन्त्र त्यागा है, उसी प्राणी को यन्त्र नष्ट करके, यन्त्र उनके द्वार आ जाता था, ऐसे यन्त्र विद्यमान थे।

मेरे पुत्र ने एक समय मुझे वर्णन कराया कि आधुनिक काल का वैज्ञानिक विज्ञान की इकाई में गति कर रहा है। मैं उन विचारों में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार–विनिमय क्या? कि मेरे पुत्र की यह प्रेरणा प्रतीत हो रही है। प्रेरणा मुझे इतनी बलवती क्यों दे रहे है? इसको मैं नही जान पा रहा हूँ। परन्तु जो उनकी एक वेदना है कि मुझे उच्चारण करने में कोई अप्रियता नहीं हैं। मुझे स्मरण है पाञ्चाली। 'अकृत्याम् देवत्याम् लोकाः।' मेरे पुत्रों! तुम्हें प्रतीत होगा– महाभारत के काल में महारानी द्रौपदी में एक विशेषता कहलाती थी। जिनके जीवन में सदैव त्याग और तपस्या की आभा रहती थी, वे विदुषी थीं, उनमें साहस रहता था।

मेरे पुत्रो ! मुझे स्मरण है जब वे बाल्यकाल में अध्ययन करती थी, 'शुन्देतवर' उनके पुराहित थे। 'शुन्देतवर' पुराहित के द्वारा उन्होंने अध्ययन किया था। अध्ययन करते समय महाराजा द्रुपद के यहाँ जो पुराहित बना था, वहाँ पुराहित और गुरु–शिष्य का संवाद चलता रहता था। उनसे उन्होंने अध्ययन यही किया कि मैं त्याग और तपस्या मे अपने जीवन को व्यतीत करूं मुनिवरो देखो मुझे उनका जीवन जब स्मरण आने लगता है, उनका जीवन कितना अडिग रहता था।

पुत्रों! जिस समय स्वयंवर हुआ था उस समय उन्होंने भरी सभा में कर्ण को यह कहा था ''दकृति वृत्ताम् वेः'' ''तुम प्रिय नहीं हो, तुम्हारी वाणी में कषैलापन है। तुम्हारे लिए मैं नही हूँ। मेरा जीवन त्याग और तपसया का मेरे विचार में तुम्हारा मस्तिष्क , तुम्हारी प्रवृत्तिं यह कहती है कि तुम अपने जीवन मे पराधीन रहोगे।'' उन्होंने शस्त्रों से दूर कर दिया कर्ण को। मछली का छेदन महाराजा अर्जुन ने किया था, अर्जुन से ही उनका संस्कार हुआ।

उसके पश्चात राजकीय अपमान के कारण उनकी धाराए परिवर्तित हो गयी। दुर्योधन इत्यादि का यह विचार बना कि अब हमे क्या करना है इतना द्वेष इतनी भंयकर अग्नि महाभारत के कण कण मे व्याप्त हो गयी थी कि उस अग्नि को शान्त नही कर सकता था ।

मेरे पुत्रो देखो यह सब हस्तिनापुर में आ पंहुचे, हस्तिनापुर में आने के पश्चात अब अपने–अपने कक्ष में गति करते थे। विश्राम में रहते हुए अपने कार्यों का, कर्त्तव्य का पालन भी करते रहते। अब यह विचार बना कि हम अब इन पाण्डवों को विजय करना चाहते हैं, पाण्डवों को कैसे विजय किया जाए? पाण्डवों को विजय करने लिए उन्होंने शकुनि को आगे किया और शकुनि से कहा तुम जुये में उनको विजय करो। बेटा! षड्यंत्र रचा गया और पाण्डवों को जुये में विजय कर लिया। परन्तु अप्रिय घटना यह हुई।

जब विनाश का समय आता है तो बुद्धियां भी परिवर्तित हो जाती है। बुद्धि में वैसे अंकुर हो जाते हैं और शकुनि तो यह कहता रहा कि विधाता–विधाताओं के गृह में कोई हार, कोई नीचा और कोई ऊर्ध्व नहीं होता। हम तो यह बनावटी ऐसे ही कार्य कर रहे हैं। आओ! हम कोई ऐसे नहीं हैं जो तुम्हें पामर करना चाहते हों। तो मुनिवरों! स्वभाव में सरल जो युधिष्ठिर भोले–भाले थे परन्तु उनकी विचारधारा यह रही कि मिथ्या उच्चारण नहीं कर रहे हैं और अब यह सब कुछ होने के पश्चात द्रौपदी को भी उन्होंने अर्पित कर दिया, तो वे वचनबद्ध हो गए।

बेटा! वचनबद्ध होने के पश्चात अगला जो दिवस आया तो महारानी द्रौपदी ने स्नान भी नहीं किया था, रजो में परिणत थी। मेरे पुत्रो। दुर्योधन ने अपने विधाता को य कहा कि विदुषी को, जो विदुषी बन रही है उसको हम सर्व–सभा में नग्न दृष्टिपात करना चाहते हैं। यह कितनी भयंकर अग्नि थी, यह कितना भयंकर विचार होता है राष्ट्र के लिए, राष्ट्रीयता का, कुटुम्ब का विनाश होने के लिए। इसीलिए तो यह भयंकर अग्नि, विचारों की अग्नि थी, जिस अग्नि को काई भी शान्त नहीं कर सका। जब मानव में धृष्टता आती है, तुच्छता आती है, विनाश का क्षण आता है तो मुनिवरो! उनके विचारों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, अग्नि दूषित हो जाती है।

मेरे पुत्रो! जब महाराजा दुर्योधन ने अपने विधाता जरयोधन से कहा, जाओ! उस रज वाली पांचाली को ले आओ। मैं उसे नग्न रूप में दृष्टिपात करूँगा, उस सभा में पूर्व से ही यह विचार बन गए थे। जब द्रोपदी को सभा में लाया गया तो माता गान्धारी ने भी कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? माता कुन्ती ने भी कहा परन्तु वे किसकी वाक स्वीकार करने वाले उस सभा में कौन ? महाराजा द्रोण भी विद्यमान थे और देवव्रत भीष्म भी विद्यमान थे और देखो! सब जरयोधन भी विद्यमान थे, पांचों पाण्डव पुत्र भी विद्यमान थे और मामा शकुनि जो मामा कहलाते थे परन्तु 'विनाशाम् विकृति जसताः।'

अब मुझे स्मरण आता हैं, नग्न करने के लिए जब महाराजा जरयोधन सभा में ले आए परन्तु सभा में लाने के पश्चात किसी का यह साहस नहीं बना कि विदुषी के वस्त्रों पर कोई अपने भुजों का आक्रमण भी कर सके। अस्त्रों–शस्त्रों से मानो देखो ! वह कोई उस पर आक्रमण नहीं कर सका। जरयोधन तो उसे ले आया आज्ञा के अनुसार और वह सभा में आ गयी।

अब वहाँ महाराजा दुर्योधन ने कहा, ''हे विदुषी! तू विदुषी कहलाती है, आज हमें विदुषीपने को नष्ट करना है।'' परन्तु देवी द्रौपदी कहती है, हे दुर्योधन! तुम्हें यह प्रतीत है कि मैंने किसी पूज्यपाद के द्वारा अध्ययन किया और यह भी तुम्हे प्रतीत है कि मेरे जीवन मे ब्रह्मचर्यव्रत एक मेरा व्रत है और यह भी तुम्हे प्रतीह है क्या मेरा एकोकी ही संसार में पति है, तुम्हें यह प्रतीत है कि दुष्टों का मैं संहार कर सकती। क्योंकि दुष्टों का संहार मृत्यु नहीं होता, तुम तो मृत्यु के मुख में अपने को परिणत करना चाहते हो।''

पुत्रों! द्रौपदी ने कहा, ''जहाँ देवव्रत जैसे हमारे पिता यहाँ विद्यमान हों, द्रोणाचार्य जैसे विद्यमान हों, इनके सबके रक्त में दूषितपन आ गया है जहाँ मेरे पति के सहित पांचों विधाता विद्यमान हों? उनके रक्त में निराशा आ गयी है उनके रक्त में सांत्वना आ गयी है। आज यह समय, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है दुर्योधन! कि तुम्हारी हस्तिनापुरी की स्थली पर अग्नि की वृष्टि होने वाली है।

अब मुनिवरों देखो! दुर्योधन कोई शब्द उच्चारण नहीं कर रहा है। दुर्योधन कहता है कि मैं नग्न कैसे करूं? जरयोधन कहता है कि मैं, साहस नहीं करूँगा और नाना विधाता कहते हें कि हममें इतना साहस नहीं है। अब मुनिवरो! विदुषी सभा में विद्यमान है। देवव्रत से द्रौपदी ने कहा, ''हे पितामह! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वतः नग्न हो सकती हूँ परन्तु इन दुष्टों में साहस नहीं है, ये पामर है, इन पामरों में क्या है। इन पामरों में आत्मबल नही है और

आत्मबल के साथ में प्रभु का आश्रय होता है, प्रभु की प्रतिभा होती है और वह जो द्वितीय स्त्री के जिसमें नग्न करने की प्रवृत्ति बन जाती है, उसमें आत्म–साहस कहाँ और वह कैसे कर सकता है''।

मानो एक विदुषी ! भरी सभा में, जहाँ नाना बुद्धिमान विद्यमान थे, वे सभा में से सब अपने–अपने गृह को प्रस्थान करने लगे। मुझे स्मरण है, मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे यह कहा है एक समय में कि द्रौपदी को नग्न करने के लिये वस्त्रों की खीचा गया, पर मुझे तो ऐसा प्रतीत है, हस्तिनापुर की स्थली पर कोई प्राणी ऐसा नहीं था जो उसके वस्त्रों को स्पर्श करने वाला हो। इतना ऊँचा उनका संकल्प, इतना साहस उसमें था। क्योंकि मेरी पुत्री में जब इतना साहस हो जाता है।

बेटा! तुम्हें प्रतीत होगा, त्रेता काल का, राजा रावण के यहाँ माता सीता रहीं। वहाँ माता सीता लगभग वर्ष भर अशोक वाटिका में रही। महाराज रावण को साहस नहीं था कि माता सीता के शरीर को स्पर्श तक करे। क्योंकि शरीर का स्पर्श तब तक नहीं होता जब तक दोनों की एक अनूकुलता प्रतीति नहीं होती। स्पर्श या तो पुत्र कर सकता है या दूरिता में, दोनों की दूरिता भावना कर सकती है। देखो ,उनके वस्त्रों को भी स्पर्श हस्तिनापुर की स्थली पर नहीं हुआ। दुर्योधन का यह साहस नहीं था परन्तु उस समय पाँचों पाण्डवों ने अपनी–अपनी प्रतिज्ञाएँ की, वह प्रतिज्ञा बनकर ही रही।

उसके पश्चात महापिता जैसे देवव्रत उन्हें भीष्म भी कहते थे, उन्होनें भी मन ही मन में नमस्कार करके आसन को त्याग दिया, द्रोणाचार्य ने भी त्याग दिया। इसके पश्चात यह कुछ वार्ता महाराजा धृतराष्ट्र के विचारों में आयी। उन्होनें अपने मन्त्री से कहा कि हस्तिनापुर की स्थली पर यह क्या हो रहा है? जब संजय से कहा गया तब संजय बोले, महाराज! कि महाराज क्या चाहते हो? तो धृतराष्ट्र ने कहा कि मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है मेरे हृदय में अशुद्ध संकल्प जागरूक हो रहे है, मेरा हृदय यह कह रहा है कि तेरे जीवन में अग्नि ही अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। अब उस सभा में ले चलो, जहाँ से मेरे श्रोत्रों में कुछ वार्ता आ रही हैं।

मुनिवरो! महाराजा संजय उस नेत्रहीन राजा को उस सभा में ले आये। राजा ने कहा, क्या है इस सभा मे? संजय ने कहा कि महाराज! महारानी द्रौपरी विद्यमान है और सभा शून्य है। सभा में कोई वाक्य उच्चारण नहीं किया जा रहा है और उसके वस्त्रों की ,एक लेखनी लगी हुई है। द्रौपदी के नग्न करने का एक दूषित विचार बना हुआ है। एक षडयन्त्र है तो राजा ने कहा, तो प्रभु! 'ब्रह्म कृति देवाः'। मुझे द्रौपदी के द्वार पर ले चलो। मेरे पुत्रो! द्रौपदी के द्वार पर आ करके राजा ने भिक्षामेदेयी की पुकार की कि हे पुत्री मुझे भिक्षा दो ! उन्होने कहा हे प्रभु! हे भगवन्! मैं आपको क्या भिक्षा दूँ। उन्होने कहा जो मैं चाहता हूँ।

उन्होने कहा ''देव! मैं कोई भिक्षा नहीं दे सकती आपको मैं किसी योग्य नहीं हूँ, मैं तो वीरांगना हूँ और संसार में मेरा संकल्प और मेरे प्रभु ही मेरे सहायक हैं। संसार में प्राणीमात्र मेरा नहीं इस सभा में। मैं क्या आपको अर्पण कर सकती हूँ, मेरे द्वारा क्या है? मेरा संकल्प ही मेरे द्वारा हैं। मैं संकल्प को आपको प्रदान नहीं कर सकती।''

मेरे पुत्रो! जब ऐसा द्रौपदी ने कहा तो नेत्रों से जलों की वर्षा होने लगी। धृतराष्ट्र ने कहा, ''हे पुत्री! मुझे यह प्रतीत नहीं था, अन्यथा मैं यहाँ आ विराजता, कि यह ''अकृताम देवाः'' कया अग्नि के काण्ड इस हस्तिनापुर की स्थली पर होंगे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे होते हुये मेरा संसार ये यह वंश सूर्य की भाँति समाप्त हो जायेगा। हे पुत्री! मै यह चाहता हूँ, तुम विदुषी हो, देवी हो, तुम मुझे भिक्षा दो अपने वंश की, मैं अपने वंश के लिये भिक्षा चाहता हूँ। उन्होंने कहा, प्रभु! मैं आपको यह भिक्षा प्रदान नहीं कर सकती। मेरे द्वारा कोई वस्तु ही नहीं है और यह तो संकल्प मेरे मस्तिष्क में आ गया है, यह तो प्रभु की अनुपमता हैं यह तो जब ''मानव दर्शन'' के ऊपर जाओगे तो तुम्हें प्रतीत होगा कि जो किसी कन्या को, देवी को , अनायास ही बिना कारण के कारण बनाता चला जाता हैं। जानो कि उसकी अग्नि में उसके जीवन की आभा नष्ट होने लगीं हे प्रभु! मैं क्या उच्चारण कर सकती हूँ? मेरे द्वारा उच्चारण करने के लिये न तो शब्द हैं और न कोई अर्पित करने के लिये वस्तु है।

मेरे पुत्रो! धृतराष्ट्र मौन हो गये और मौन हो करके कहा कि देवी! तुम क्या चाहती हो? उन्होंने कहा कि मैं और मेरा जो पति है और पति के जो विधाता हैं इन सबको मुक्त कराना चाहती हूँ। उन्होंने कहा, ''तथास्तु''। द्वितीय वचन मैं यह चाहती हूँ कि मेरे पति और उनके विधाताओं के सब अस्त्र–शस्त्र प्रदान हो जाने चाहिये। उन्होनें कहा, ''तथास्तु।''

परन्तु दुर्योधन की स्वार्थपरता यहाँ आती है। पुत्रो! यही स्वार्थपरता हस्तिनापुर का अग्निकाण्ड बनकर रह गयी। दुर्योधन कहता है पिता एक वचन मेरा भी है। पितर ने कहा क्या चाहते हो? मैं पाण्डवों को 12 वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास चाहता हूँ , अज्ञातवास समय पाण्डव कहीं भी दृष्टिपात न हो। राजा ने कहा अच्छा पुत्र यह भी ''तथास्तु।''

मेरे पुत्रो! 'तथास्तु' कहते ही महाराजा धृतराष्ट्र भूमि में अर्पित हो गये और उन्होंने कहा कि यह ममता मेरे द्वारा नहीं होती, तो यह हस्तिनापुर मेरे समीप अग्नि का काण्ड नहीं बनता। यह बन करके रहेगा क्योंकि ममता ने मेरी आभा को को नष्ट कर दिया है मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण है, मैं उस काल की वार्ता प्रकट करता हूँ कि कितना क्षुद्र काल आया। उस काल को कहाँ तक स्मरण करूँ। मेरी पुत्रियों में कितना साहस रहा है। कितनी आभा रही है। संकल्प–शक्ति के द्वारा कोई उसके वस्त्र को भी स्पर्श नही कर सका। एक ऐसी विद्वत सभा में, ऐसी राज्यसभा में, दुर्योधन का साहस नहीं बन पाया। क्योंकि जो मानव दूसरों को नष्ट करना चाहता है वह स्वतः नष्ट हो जाता है। जो दूसरों के प्रति अपनी आभा को नहीं चाहता मुनिवरो! उसका अशुद्ध संकल्प बन करके उसके लिये मृत्यु का मूल कारण बन जाता हैं।

मेरे प्यारे ! मुझे स्मरण है, द्वापर का वह काल, जहाँ हस्तिनापुर के क्षेत्र में अग्नि काण्ड बन गया था। अग्नि काण्डों में यह संसार परिवर्तित हो गया। तो विचार क्या? कि विज्ञान का दुरूपयोग। विज्ञान जब बलवती होता है तो विचारों में अशुद्ध–वाद आ जाता है और यह भौतिक–विज्ञान महाभारत काल में इतना बलवती बना कि इसके बलवती बनने की कोई सीमा प्रदान नहीं कर सकता। आज समय इतनी आज्ञा नहीं दे रहा हैं।

मुनिवरो! मैं तुम्हें यह विचार देने के लिये आया हूँ कि यह जो संकल्प शक्ति है, यह बलवती है और आत्मबल है, यह मानव का साक्षी बन करके रहता है। महारानी द्रौपदी ने सदैव अर्जुन की पत्नी बन करके अपने जीवन को त्याग और तपस्या में परिणत किया। मेरे पुत्र ने मुझे एक समय में वर्णन कराया कि यह पाँचों पाण्डवों की पत्नी कहलाती थी। परन्तु जब यह पाँचों पाण्डवों को पत्नी ने ऐसा उच्चारण किया, तो मुझे बड़ी हर्ष ध्वनि हुई उस समय में । क्या मेरे पुत्र क्या उच्चारण कर रहे है। परन्तु जो इतनी विदुषी हो, उसने अपने पति के विधाताओं को अथवा किसी द्वितीय पुरूष को भी पिता या पुत्र ही दृष्टिपात किया। पति के चारों विधाताओं ने पुत्री भाव से तथा मातृभाव से रक्षा की। परन्तु आज उनके प्रति ऐसा अशुद्ध शब्दों से बेटा हम श्रवण करना भी नहीं चाहते।

विचार–विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! तुम्हें स्मरण होगा देखो , त्याग और तपस्या ही मानव का जीवन हैं बाल्यकाल से लेकर त्याग और तपस्या जब मानव के जीवन में होती है, पुत्रियों के जीवन में होती है, उनके जीवन में पवित्रता बन करके उनका पवित्र जीवन ही उसके जीवन की आभा बन करके मनोनीतता को प्राप्त हो जाता है।

मुनिवरो! आओ मै विशेष चर्चा तुम्हे प्रगट करना नही चाहता हूँ। महारानी द्रौपदी के ये शब्द तुम्हें स्मरण होगे। महाराजा देवव्रत बाण शैया पर जब विद्यमान हो गये, तो द्रौपदी ने कहा था कि हे पितर! आप इस समय ब्रह्म की चर्चा कर रहे हैं और देवयान और पितृयान की चर्चा कर रहे हैं आप दक्षिणायान और उत्तरायण की चर्चा कर रहे है उस समय आपका उत्तरायण कहाँ चला गया था जिस समय मुझे सभा में नग्न करने की प्रेरणाओं ने मुझे कृतियों में परिणत किया था। उस समय देवव्रत जी क्या उत्तर देते हैं कि ''मैने दुर्योधन का अशुद्ध अन्न ग्रहण किया था। मेरा मन उस अशुद्ध अन्न से प्रभावित हो रहा था।

मानो देखो जब इसीलिए मन को मानव को पवित्र बनाना हो तो अन्न उतना पवित्र होना चाहिये कि मन संकल्प करते ही पवित्र हो जाये। बेटा! द्रौपदी कैसा भोजन करती थी। बाल्यकाल से वह स्वयं परिश्रम करती थी, मुझे स्मरण है ,उस परिश्रम से भोजन करती थी।

यहाँ नाना पुत्रियाँ, मेरी माताएँ इसी प्रकार की हुयी है। माता कौशल्या के राम हुये। माता कौशल्या कला–कौशल करती थी। उसके बदले जो अन्न आता उसे ग्रहण करती थी। वह माता राम जैसों को जन्म देती है। मानो देखो ! ''गृहेः वृत्तम देवाः'' वह माता पवित्र मन वाली होती हैं कौन?

जैसे राजा कंस के कारागार में वहाँ वसुदेव और देवकी रहते थे। देवकी सदैव गायत्री का चिन्तन करती थी। संकल्पवादिनी बनी रहती थी। भगवान कृष्ण जैसो को जन्म देने वाली हुई। वे माताएँ महान् कैसी होती है। जिसका मन पवित्र होता है। मानो देखो एक सौ एक गायत्री पठन–पाठन करके जो कंस अन्न देता था उसको गायत्री माँ से शोधन करके, शुभ संकल्प करके उसको पान करती थी। मेरे पुत्रो! इन क्षेत्रों में विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूँगा।

विचार यह देने के लिये आया हूँ कि हमारे यहाँ 'मानव–दर्शन' एक मानवीयता का अंग बन करके वहाँ उनके मस्तिष्कों में पनपता रहा है। ऋषि–मुनियों की आभाओं में पनपता रहा है और उनके वायुमण्डल में पनपता रहा है। मेरे प्यारे! महारानी द्रौपदी भी सदैव कला–कौशल करती थी, वे कला में पारायण थी। कला–कौशल वे पुष्पों के हारों का संग्रह करती थीं उनके बदले जो द्रव्य आता था उससे जीवन निर्वाह करती थी।

बेटा! माता कुन्ती ने द्रौपदी से यह कहा कि हे पुत्री! तुम ऐसा क्यों करती हो। द्रौपदी ने कहा इससे मेरा मन पवित्र होता है। मैं अपने मन को पवित्र रखना चाहती हूँ। मैं इस संसार का जो यह तुम्हारा राष्ट्र है यह अशुद्ध बन गया है इस हस्तिनापुर की स्थली में अग्नि प्रदीप्त हो गयी है। मैं इसमें कोई वाक्य उच्चारण नहीं कर सकती। इसलिये मेरे कार्य में तुम बाधक मत बनो। मेरे पुत्रो! वे भयंकर वनों में रही और वहाँ स्वयं परिश्रम करती थी।

आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूँगा। विचार विनिमय क्या है? मुनिवरो! कि मेरी पुत्रियों का जब संकल्प बन जाता है तो कोई उनको अष्टभुजों से भी स्पर्श नहीं कर सकता। अशुद्धता से उसका स्पर्श नहीं कर सकता। प्रेम, प्रीति और मातृ भाव से, पुत्री भाव से स्पर्श करना तो उनके लिये एक शोभा बन जाती है। परन्तु अपवित्रता से, अशुद्धता से उसको स्पर्श करने का किसी में साहस नहीं रहता।

यह हे पुत्रो! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। आज तुमने यह जान लिया कि हमारा जीवन कितना पवित्र होना चाहिये। मेरी पुत्रियों का जीवन कितना पवित्र रहा है, कितना संकल्पवादी रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते हैं कि भगवान कृष्ण ने कौरव सभा में द्रौपदी के वस्त्रों को वृद्धि किया। ये आशीर्वाद तो होते हैं। शुभ–संकल्प जाने कितने ऋषियों के उनके साथ थे। परन्तु रहा यह कि यौगिकता में ''अयोध्यां कृति देवाः' बेटा! ये तो अपवाद की चर्चाएँ हैं, अपवाद है, इसीलिये उसकी चर्चा में प्रकट नहीं करूँगा। परन्तु संकल्प जो मैंने दृष्टिपात किया, वह मात्र संकल्प है। अपवाद में हमं नहीं जाना चाहता।

विचार–विनिमय यह कि हमारा संकल्प सदैव ऊंचा बना रहे, महान् बना रहे। यह है बेटा आज का वाक्य। अब समय मिलेगा, शेष चर्चाएँ हम कल प्रगट करेंगे। **ओ३म् गायाः**

९. नवम अध्याय–संकल्प–शक्ति की महत्ता — 21–04–1979 रात्रि

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से निज वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद–वाणी मे उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसकी प्रतिभा इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड में ओत–प्रोत हैं।

आज का हमारा विचार वेद–मन्त्र हमें नाना प्रकार की प्रेरणा दे रहा था। मानव को उच्चारण कर रहा था, 'हे मानव! तू गान गाने वाला बन। तू गान–रूपों में अपने प्रभु की महिमा का गान गाता रह, जिससे तेरा मानवीयतव पवित्र बनता हुआ, यह जो संसार–रूपी सागर तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है, इस संसार–रूपी सागर से तुम पार हो जाओ।' प्रातःकाल में साधक विद्यमान है, वह अपने प्रभु का गान गा रहा है, अपने प्रभु की गाथा गा रहा हैं और वर्णन कर रहा है, 'हे देव! आप तो इस महान् जगत् में, कण–कण में व्याप्त हो। कोई स्थली ऐसी नही हैं जिस स्थली पर आपका वास न हो।

आप कैसे अनुपम है, कैसे देव है? जो इस संसार को रचाकर इसका संचालन हो रहा है। कोई संसार का परमाणु एक स्थली पर स्थिर नहीं रहता। वे परमाणु गति कर रहे है और यह संसार गतिवान हो रहा है। पृथ्वी अपनी आभा पर गति कर रही है, सूर्य अपनी आभा पर गति कर रहा है, चन्द्रमा अपनी आभा पर गति कर रहा है। मेरे प्यारे! पञ्च महाभूतों के जो परमाणु है, अपनी अपनी आभा पर गति कर रहे है। यह संसार गतिशील रहा है, गतिशील है। यह तेरी कैसी अनुपमता है?

हे माँ! तुझे वेद ने वसुन्धरा नामों से वर्णन किया है। तुम जहाँ पिता हो वहाँ मातेश्वरी भी तुम्ही कहलाती हो, तुम कैसी भोली माँ हो, तुम कैसी मेरी पवित्र माँ हो? तुम ममत्व को प्राप्त होती हुई मेरी माँ वसुन्धरा कहलाती हो। यह संसार, यह सवर्त्र–ब्रह्माण्ड आप में समाहित हो रहा है। जैसे हम माता के गर्भस्थल में विद्यमान हो करे हमारे सर्वागों का निर्माण हो रहा है। मानो सर्व अड्.ग माता के गर्भस्थल में हिरण्यमयी गर्भों में विद्यमान रहते है।

इसी प्रकार यह जो सवर्त्र–ब्रह्माण्ड हे, यह अपने में गति कर रहा है। हे वसुन्धरा! यह तेरे ही गर्भस्थल में गति कर रहा है। वेदों ने नाना रूपों में तेरा वर्णन किया है। जहाँ तेरा वर्णन नामों से वर्णित है। तुझे वसुन्धरा कहते हैं क्योंकि यह सब जितना भी वसु हे वह तेरे में वशीभूत हो रहा है।

बेटा! पर्यायवाची शब्द है। मैं इनमें जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु हे भोली ममतामयी! तू इस संसार को रचा कर तू इसका पालन कर रही है। तू पालन करने वाली है। तू कैसी मेरी श्रद्धामयी देवी है। जब तू किसी मानव के हृदय में जागरूक हो जाती है तो यह मानव तुझे प्राप्त हो जाता है जब यह तेरी श्रद्धामयी ज्योति जागरूक हो जाती है तो वह ज्योति वन करके अनुपमता को प्राप्त होती रहती है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हें यह उच्चारण करने के लिये आया हूँ कि यह संसार 'हे श्रद्धामयी देवी तेरे वशीभूत हो रहा है। 'हिरण्यमयी गर्भा' यह तेरा गर्भाशय है सवर्त्र–ब्रह्माण्ड। इसमें प्रत्येक मानव विद्यमान है, प्राणी मात्र विद्यमान है, गति कर रहा हे, ओजस्वी बना रहा है।

आज मैं तुम्हें यह उच्चाकरण करने के लिए आया हूँ कि वेद तुम्हें विष्णु कहता है। जहाँ वसुन्धरा कहता है वहाँ विष्णु भी कहता है। वेद मन्त्रों में आता है ''विष्णु व्रताम् देवाः हिरण्यम् बृहीः।'' तू विष्णु है, पालन करने वाला है, पालन कर रहा है। मेरे प्यारे! वह महान् देव विष्णु बन करके संसार का पालन कर रहा है। जितना भी, जहाँ भी तुम रक्षा दृष्टि से दृष्टिपात करोगे, वह तुम्हें प्राप्त होने लगेगा।

आओ मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हे इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चाएँ अथवा इस उपासना–काण्ड में तुम्हें ले जाने के लिए नहीं आया हूँ। मेरे प्यारे! मैं उच्चारण कर रहा था, इससे पूर्व शब्दों में संकल्प–शक्ति। जब मानव का संकल्प इतना विशाल बन जाता है, उसकी चरित्रता उसकी महनत्ता इतनी विशाल बन जाती है कि सर्पराज, मृगराज, सिंहराज उसके चरणों की वन्दना करने लगते है। उसमें ओत–प्रोत हो जाते है। मेरे प्यारे! जब मानव गान गाता है, उस गान से मुनिवरो देखो ! वह संसार से मुक्त हो जाता है। वह प्राणेश्वर का गुणगान गा रहा है, ध्वनि हो रही है और उस ध्वनि को प्रत्येक प्राणी श्रवण कर रहा हैं।

इससे पूर्व शब्दों में तुम्हें चाक्राणि की चर्चा कर रहा था। इससे पूर्व शब्दों मैं तुम्हें विदुषी द्रौपदी की चर्चा कर रहा था। उनका जीवन कितना विशाल? कितनी विशालता उनके जीवन में थी। क्योंकि जब मेरी पुत्रियों के हृदय में विशालता होती है, त्याग और तप होता है उनका जीवन ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो जाता है।

मैं तुम्हे यह विचार दे रहा था कि मुनिवरो! सभा में एक विदुषी विद्यमान है और उस विदुषी को कोई स्पर्श नहीं कर सका क्योंकि चरित्र की जो अग्नि होती है, वह इतनी विशाल होती है कि पापी के भुजबल समाप्त हो जाते है, वे निष्क्रिय बन जाते है। राष्ट्र के सहस्रो व्यक्ति मौन हो जाते है।

मै उच्चारण कर रहा था, द्रौपदी की चर्चाएँ। हस्तिनापुर के क्षेत्र में बेटा! एक अग्नि का काण्ड स्थापित हो गया। अग्नि काण्ड उसे कहते है जहाँ विनाश हो जाये। जहाँ भयंकर अग्नियाँ प्रदीप्त हो जायें और वह विचारों में प्रथम अग्नि प्रदीप्त होती हैं। जिस राजा के राष्ट्र में चरित्र मानवता नहीं रहती, उसका राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है। जहाँ मेरी पुत्रियों के सतीत्व को हनन करना, जिस राजा के राष्ट्र मे,मानो देखो , वह राष्ट्र अग्नि का क्षेत्र बन करके रहता है।

मैने तुम्हें बहुत पुरातन–काल में निर्णय देते हूए कहा था मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आती रहती है भगवान कृष्ण की चर्चाएँ, उनकी वार्ताएँ उनके जीवन में सदैव प्रकाश रहता था। वे रक्षक थे, वे सदैव रक्षा करते थे। अपने जीवन की प्रथम और द्वितीय किसी ''अमृताम बृहिः वृताम।'' कोई भी प्राणी आ जाये उसकी रक्षा करना उसका कर्त्तव्य था। मेरे पुत्रो, वे जब वेद की रक्षा करने में लग जाते तो वेद की रक्षा करते रहते, उन्हें क्षुधा भी नहीं लगती थी।

मेरे पुत्रो !जिस समय महारानी द्रौपदी ने अपने पाँचो कुटुम्बियों को और अपने पति को ले करके राष्ट्र–स्थली को त्याग दिया, अस्त्रो–शस्त्रों के भण्डार को भी अग्नि में अर्पित कर दिया। भयंकर वनों में जा पहूँचे। उस भयंकर वन में पहुँचे जहाँ वे अपने में भ्रमण करने वाले, कोई भी प्राणी उनकी रक्षा में लग गये।

भगवान कृष्ण उनसे थोड़ी दूर स्थली पर एक वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहे थे। वे विज्ञान का अनुसन्धान करते थे और मुनिवरो ! उनके आश्रम में जहाँ अनुसन्धान करते थे और भी शिक्षार्थी विद्यमान होते थे और महारानी रूक्मिणी भी रहा करती थीं। महारानी रूक्मिणी भी बेटा, उनके द्वारा, वह भी अनुसन्धान करती रहती थीं।

एक समय वे एक यन्त्र का निर्माण कर रहे थे और वह यन्त्र ऐसा था कि मैं दिवस की रात्रि कैसे बना सकूं? क्योंकि यह सूर्य अस्त हो जाता है, अन्धकार आ जाता है, रात्रि आ जाती है। नेत्र अन्धकार में अपने को दृष्टिपात करने लगते हैं। यह कैसे अन्धकार आता है? और कहाँ से आता है? तो मुनिवरो! उन्होंने एक 'त्रुकेतुक विशारद कृत' नाम के यन्त्र का निर्माण किया था और उस यन्त्र में उन्होंने पार्थिव तत्त्वों को जानने की, पार्थिव परमाणुओं को एकत्रित करने का प्रयास किया।

मेरे पुत्रों! उन तत्त्वों को एकत्रित करने के पश्चात उन परमाणुवाद को यन्त्रों में स्थित कर लिया, जिन परमाणुओं से सूर्य के आदित्य की किरणों को निगल जाए और रात्रि छा जाए और किरणें वहीं शान्त हो जाए। वह यन्त्र उन्होंने निर्मित किया। जब निर्माण कर लिया तो उसका परीक्षण भी किया गया। जब परीक्षण हुआ तो दिवस की रात्रि छा गई। रात्रि के छाने के पश्चात मुनिवरो! जब अन्धकार हो गया तो महारानी रूक्मिणी सहायक थीं उन्होंने द्वितीय यन्त्र का निर्माण किया था 'प्रकाशाम् सबेह वृतसम् देवत्य' नाम का यन्त्र था। उसमें यह था कि यदि उस यन्त्र को त्याग दिया जाए, उसका प्रहार कर दिया जाए तो अन्धकार के परमाणुओं को निगल लेता। सूर्य की किरण ज्यों की त्यों उसके प्रकाश में आ जाए। मेरे प्यारे ! उन्होंने इन दो यन्त्रों का निर्माण एकांत स्थली पर भयंकर वनों में किया था।

इस यन्त्र की विशेषता भीम के पुत्र घटोत्कच भी जानते थे। इस प्रतिक्रिया को कर्ण भी जानते थे। परन्तु यन्त्र का निर्माण उन्होंने नहीं किया। तुम्हें प्रतीत होगा बेटा! जिस समय महाभारत का युद्ध हुआ, उस समय उस यन्त्र को भगवान कृष्ण के त्यागा था। दोनों यन्त्रों का प्रतिपादन हुआ और समय हुआ जब अभिमन्यु का निधन हो गया। जयद्रथ ने उनके लिए घृष्टता की। तब मुनिवरो! जब सुशमी के यहाँ से भगवान कृष्ण और अर्जुन दोनों का आगमन हुआ और अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की कि में सूर्य अस्त होने से पूर्व जयद्रथ का विनाश कर दूंगा।

परन्तु अब जब अर्जुन अपने में ह्रास होने लगे, जयद्रथ प्रतीत नहीं हो रहा था कहाँ है, तों उस समय भगवान् कृष्ण ने अपनी आकाशवाणी के द्वारा महारानी से कहा, ''त्रुकेतुक विशारद कृत अन्वेषण यन्त्र'' छा जाना चाहिए। अब मुनिवरा! जब उन्होंने यन्त्र का प्रहार किया, वह छा गया, सूर्य समाप्त हो गया। भगवान् कृष्ण बोले अर्जुन! सूर्य समाप्त हो गया है चिता तैयार करो। तब अर्जुन अग्नि की चिता मरण–शैया पर विद्यमान हो गए। जब मरण–शैया पर विद्यमान हो गए तो जयद्रथ इत्यादि सब युद्धस्थल पर समूह एकत्रित हो गया। क्योंकि एक जो पाण्डवों में सेनापति था, इस युद्ध का सर्वेसर्वा उसका निधन हो रहा है, अग्नि में प्रवेश हो रहा है। सब कौरव इत्यादि दृष्टिपात करने आगे आए साथ में जयद्रथ भी आया।

तब भगवान कृष्ण ने अपनी आकाशवाणी से रूक्मिणी को पुनः प्रहस्त किया, और यह कहा कि अब ''प्रकाशाम् सबेह वृताम् देवाः प्रहारास्तुति।'' मेरे प्यारे! महारानी रूक्मिणी ने वही किया, सूर्य उदय हो गया। सूर्य तो बेटा! उदय था ही, वह अन्धकार समाप्त हो गया तब भगवान कृष्ण ने कहा, ''हे अर्जुन! जयद्रथ तुम्हारे समीप है, सूर्य अभी उदय हो रहा है, सूर्य का प्रकाश आ रहा है।' तब अर्जुन ने अपने अस्त्रों–शस्त्रों से अपने गाण्डीव–शस्त्र से उनके कण्ठ के ऊपर ले भाग को देर कर दिया। भगवान् श्री कृष्ण बोले 'अर्जुन'! तुम्हारा मस्तिष्क भी नीचे गिर जाएगा। यदि इसका मस्तिष्क भूमि पर गि गया। तब अर्जुन ने द्वितीय यन्त्र का प्रहार किया सन्कल्प शक्ति का वह यन्त्र था।

मुझ स्मरण है जब वह यन्त्र गति करता हुआ, जयद्रथ के पिता, गङ्गा के किनारे संध्या का पाठ कर रहे थे, मानो ,गान कर रहे थे प्रभु के आँगन के लिए उनकी गोद में जा करके वह जयद्रथ के कण्ठ का ऊपरला भाग जा करके पहुंचा, तो मुनिवरो! पिता और पुत्र दोनों ही समाप्त हो गए।

तो बेटा! यह विज्ञान कहाँ से प्राप्त होता है मानव को? यह वेद की परम्परा से इस वेद की आभा में सर्वत्र विज्ञान विद्यमान है। मुझे स्मरण है, मैं आज उस तुम्हें उस क्षेत्र मे ले जाना नहीं चाहता हूँ आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिये आया हूँ कि हमारे यहाँ इस प्रकार का विज्ञान बुद्धिमानों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है। बुद्धिमानों की आभा में गति करता रहा है।

मेरे पुत्रो! वह महाराणा, 'प्रहाः कृतः देवा' जब महाराजा अर्जुन का अपने आसन पर विद्यमान हो करके भयंकर वन में महाराजा कृष्ण से मिलान होता, चर्चाएँ होती, अस्त्रों–शस्त्रों की चर्चाए होती रहती । तो मेरे पुत्रो देखो ! उन्होने नाना प्रकार के अस्त्रो–शस्त्रो को जाना , वैज्ञानिक–क्षेत्र में उनकी जितनी गति थी, उतनी उस समय किसी भी प्राणी की गति नहीं थी। वे सर्व वेद की सुगठित रक्षार्थ में लगे थे।

एक समय बेटा! भगवान् कृष्ण और अर्जुन अनुसन्धान कर रहे थे। विचार–विनिमय चल रहा था। उन मन्त्रों में वे रमण कर रहे थे। रमण करते हुये उन्हें तीन दिवस हो गये। अन्न का भी पान नहीं किया। उन्हें संसार का ज्ञान ही नहीं रहा वेदों में वे इतने संलग्न हो गये। उन्होंने इस संसार को क्षेत्र–क्षेत्र कहकर स्वीकार किया कि यह संसार तो क्षेत्र है और क्षेत्र है चेतन।

बेटा! ऐसा उच्चारण किया, ऐसा प्रतिपादन करके वे इसी आभा में गति करने लगे। यह संसार तो एक क्षेत्र है यह विश्राम करने का क्षेत्र नहीं है यह गति करने का क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र में भगवान् परमात्मा विद्यमान है यह उन्होनें अपनी आभा में प्रगट किया। तीन दिवस हो गये, महारानी रूक्मिणी बोली, ''प्रभु! आप अन्न का भी पान नहीं कर रहे हैं।'' भगवान! कृष्ण ने कहा, ''देवी! मै ऐसा भोजन पान कर रहा हूँ, ऐसा भोजन मुझे प्राप्त हो रहा है कि मुझे यह स्थूल शरीर का जो अन्न है वह मुझे स्मरण ही नहीं आ रहा है।'' मेरे पुत्रो! उनकी यह कितनी महनत्ता थी।

मेरे प्यारे देखो ! वे उच्चारण कर रहे थे कि मैं सूक्ष्म शरीर के अन्नादि को पान कर रहा हूँ। जिससे तेरे जन्म–जन्मांतरों के संस्कार पवित्र बन जायें। जिससे मैं उस आभा में गति करने लगूँ, जिस आभा में गति करने के पश्चात मेरे नाना जन्मों की वार्ता मुझे स्मरण है। सौ–सौ जन्मों की वार्ता उन्हें स्मरण रहती थी। मेरे पुत्रो! वह सब स्मरण–शक्ति के द्वारा उनके विचारों में, उनके मस्तिष्क में, उनके क्षेत्र में स्मरण–शक्ति अंकित रहती थी।

मैं तुम्हें नाना प्रकार के यन्त्र वादों में नाना प्रकार के आध्यात्मिक विज्ञानवेता और भौतिक विज्ञानवेता के विषय में उच्चारण कर रहा था, मैं उसी वाक्य पर आ गया बेटा! कि यह आध्यात्मिवाद मानव का आत्मिक भोजन हैं। वार्ता श्रवण करना यह भी आत्मा का भोजन है। शरीर का पालन–पोषण करना यह शारीरिक भोजन है और इस भोजन को जो मानव पान करता है, उसी भोज्य में रहता है।

बेटा! जो मानव आत्मा को भोजन नहीं देता वह आगे चल करके क्या लायेगा संसार में, उसके लिये क्या है? अरे मानव! जैसे तुम रूपी भोजन को पान करते हो ऐसे आत्मा के भोजन को भी तो पान करने वाले बनो। आत्मा का भोजन भी तुम्हारे समीप होना चाहिये। वह आत्मा का भोजन क्या है?

मेरे प्यारे वेद के विचारों को ले करके अपने विचारों की ऊर्ध्वा उड़ान ही यह आत्मा का भोज्य माना गया है। आत्मा के भोजन में तुम संलग्न हो जाओ। जैसे भगवान कृष्ण, जहाँ के राष्ट्रीय विज्ञान को भौतिकवाद में रमण करते रहते, वहाँ आध्यात्मिकवाद में वे क्षेत्र के और क्षेत्र की चर्चा करते रहते थे, वे सदैव उसमें रमण करते रहते थे। स्मरण शक्ति उन्हें जागरूक करती थीं उसी में सदैव गति करते रहते थे। उन गोपिकाओं में अर्थात् गोपनीय विषय में वे सदैव गतिमान रहते थे।

तो आओ मेरे पुत्रो ! मैं तुम्हें आज यह उच्चारण करने के लिये आया हूं कि हम प्रभु का गुणगान गाने वाले बनें। हे प्रभु! तू महान है, हे प्रभु! तू उज्जवल है। मानो ,तेरी महिमा इस संसार में ओत–प्रोत है। तो मेरे पुत्रो ! मैं तुम्हें विदुषी की चर्चा कर रहा था। जब भंयकर वन में आसन लगाया तो मेरे प्यारे देखो, वहाँ ऋषि–मुनियों का समूह उनके समीप आया। क्योंकि ऋषि मुनि उनके समीप आ करके वह भोज्य को प्राप्त करते , मेरे पुत्रो ! उन्होने कहा हे महारानी तुम चाहती क्या हो ? ऋषियों ने जब यह कहा ते उन्होंने कहा, प्रभु! मैं यह चाहती हूं कि मैं यहाँ भंयकर वन में अतिथि सेवा तो कर सकूं। क्योंकि अतिथि मेरे द्वार पर आये उनकी मैं सेवक तो बनूं। क्योंकि मैं तो सदैव सेवक हूं।

संसार में प्रत्येक प्राणी सेवक है। मेरे प्यारे ! कोई मानव–मानव का सेवक है। कोई भी प्रभु का सेवक बन जाता है। परन्तु द्रौपदी ऋषियों से कहती हैं, मैं अतिथियों की सेवक बनना चाहती हूं। तब ऋषि मुनियों ने उन्हें एक पात्र दिया। जो एक संकल्पमयी, शक्तिवादी बटलोई कहलाती थी। उस बटलोई में यह विशेषता थी कि उसमें कुछ अन्न प्राप्त होता और जब तक महारानी अन्न नहीं ग्रहण करती थी तब तक उसमें समाप्त नहीं होता था।

मेरे पुत्रो ! हमारे आचार्यों ने वैदिक साहित्य में संकल्प–शक्ति को एक महान शक्ति माना है यदि उस संकल्प, तप और निष्ठा के साथ होता है। मेरे प्यारे! वह संकल्पशक्ति के द्वारा ही अतिथियों की सेवा करती रही। बेटा! नाना प्रकार का भोज्य आता रहा। भगवान कृष्ण भी उनकी सहायता करते रहे। भयंकर वनों में द्रौपदी अतिथियों की सेवा करती रही। कोई भी अतिथि आ जाता, ऋषि–मुनि आते, भोज्य प्राप्त करते, द्रौपदी प्रसन्न होती रहती।

बेटा! देखो, वह मेरी पुत्री कितनी सौभाग्यशाली होती है जो सदैव गृह में प्रसन्न रहने वाली है, सदैव गृह में जो प्रसन्न रहने वाली होती है, उनके गृह द्रव्य समाप्त नहीं होता, उनके गृह में सदैव प्रसन्नता रहती है। तो मुनिवरो! अतिथि सेवा करना यह मेरी पुत्रियों का कर्त्तव्य कहा जाता है। उनका चरित्र, उनकी निष्ठा उनमें सदैव लगी रहती है, परन्तु ऋषि कहते हैं, आचार्यों ने भी कहा है कि हमारे यहाँ प्रभु से प्रार्थना है कि हमारे गृह में ऐसे अतिथि होने चाहिये जो बुद्धिमान हों, जो सुचरित्र हों, जिनके विचारों की तरंगे हमारे शरीर में प्रवेश हो करके हमारा गृह भी पवित्र बन जाये।

तो मेरे प्यारे! देखो, वे सदैव आभा में स्थिर रहने वाली थीं। एक समय महारानी द्रौपदी और और मुनिवरो देखो ! सोमकेतु ऋषि महाराज, मुद्गल ऋषि गोत्रय दोनों विचार विनिमय करने लगे। ऋषि मुनि महाराज से देवी ने कहा, प्रभु! कोई वार्ता होनी चाहिये। उन्होंने कहा, हे देवी! वार्ता क्या है? सदैव यह तुम्हारा जो तप है इस भयंकर वन में, प्रकाश में आ रहा है। यह तुम्हारा प्रकाश है। तुमने अपने जीवन में सदैव महत्ता को ही अपना अग्रणीय कर्म बनाया है। तो मेरे पुत्रों! नाना ऋषियों की चर्चाएं होतीं, आत्मिक चर्चाएं होतीं, राष्ट्रीय चर्चाएं होतीं।

मेरे पुत्रों! दुर्वासा के शिष्य थे, सुदनमन्त ऋषि महाराज वे द्रौपदी के समीप आये। उन्होंने कहा, हम तो नामोकरण श्रवण करके द्वार पर आये हैं। हमने यह श्रवण ही किया है। आज हमें यह प्रतीत हो गया है कि जिस मानव में तथा देवी में और जिस पुत्री में दुष्चरित्रता आ जाती है तो उसका जीवन भ्रष्ट हो जाता है, उनके जीवन में आभा समाप्त हो जाती है। आज हे देवी! तुम्हारा जीवन प्रकाश में आ रहा है। केवल सुविचारों से ही प्रकाश में आ रहा है।

मेरे प्यारे देखो ! ऐसा कहा जाता है द्रौपदी के सम्बन्ध में कि, क्या मुनिवरो देखो ! तुमने श्रवण किया होगा, उनका गोह 'वर्णतकेतु' थे। वह द्रौपदी अपने सात जन्मों की वार्ता को जानती थीं वे सात जन्मों में क्या–क्या रहीं। यह उन्हें स्मरण था। हमारे यहाँ जो संस्कारों की विचारधारा है, यह परम्परा से ही विचित्र मानी हैं ऋषि–मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया कि हम पिछली जन्म कीआभा में क्या–क्या रहे और यह भी मानव जान लेता है, तप के द्वारा कि 'अग्रणीय आभाः युक्तम देवाः'। मैं अग्रणीय आभा में क्या बन सकता हूं।

मेरे प्यारे! कर्म का जो सिद्धान्त है, कर्म की जो धारा है वह बड़ी विचित्र, विलक्षण मानी जाती है। आज मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा के सूक्ष्म क्षेत्रो कें में तुम्हें नहीं ले जाऊंगा। तो विचार क्या? द्रौपदी अतिथि सेवा करती रही। पाण्डव भ्रमण करने जाते–भ्रमण करते हुये महारानी द्रौपदी के लिए कन्दमूल वनों में से लाते, उन्हें भी वे पान करती थी, कुछ अतिथियों को देती रहती। तो मुनिवरो! उनका स्वराज्य, उनकी जो धाराएं थी, वहां वन में भी इस प्रकार की रही।

विचार–विनिमय क्या? जैसा मेरे पुत्र को मैनें कई काल से वर्णन कराया कि मानव के जीवन की जो गाथा है वह उसकी महत्ता है। मानव के जीवन की जो आभा है वह उसका चरित्र है। मानव के जीवन की जो विशेषता है वह उसकी यौगिकता है।मानव के जीवन में यदि कोई सुन्दरता है तो उसकी विद्या है। यदि मानव के जीवन का कोई आभूषण है तो उसका वह ज्ञानहै। ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाले मानव सुन्दर आभूषण को अपना करके और आभूषणों को ले करके द्यु लोक को प्राप्त हो जाते हैं।

आओ मेरे प्यारे ! आज का हमारा विचार विनिमय क्या है? मैं तूम्हें यह उच्चारण करने आया हूं कि जो मानव परमात्मा को और मुनिवरो! विशेषता को धारण करने वाला होता है उसको अग्रणीय वर्ता आगे की वार्ता उनको स्मरण करने लगती हैं। वह आगे की वार्ताओं को विचारने लगता है। मेरे प्यारे देखो! जैसे भगवान कृष्ण को अग्रणीय वार्ता आती रहती थी और महारानी द्रौपदी को भी अग्रणीय वार्ताएं आती थी।

मेरे प्यारे! देखो ऐसी ही भगवान कृष्ण के जीवन की एक गाथा मुझे स्मरण आती रहती है। जब महाभारत संग्राम समाप्त हो गया, कुरूक्षेत्र श्मशान स्थली बन गयी उस समय महाभारत के संग्राम से प्राणीमात्र दृष्टिपात करने के लिए सूक्ष्म रह गये। कौरवों के कुटुम्ब में केवल घृतराष्ट्र नेत्रहीन रह गया, माताएं रह गयी परन्तु पाण्डव पुत्रों ने विचारा कि अब हमें कहाँ गमन करना चाहिये।

बेटा! कुरूक्षेत्र में एक सभा हुयी और युधिष्ठिर ने भगवान कृष्ण से कहा कि 'महाराज! अब हम कहाँ गमन करें? उन्होंने कहा, 'हस्तिानपुर चलो। जब युधिष्ठिर ने कहा, बहुत प्रिय। भगवन् गति करो, तो वहाँ से जब गति करने लगे तो भगवान कृष्ण नेत्रों को अन्तर्मुखी हो करके चिन्तन करके बोले, आज गति नहीं करेंगे। हम कल हस्तिनापुर घृतराष्ट्र के समीप जायेंगे। मेरे प्यारे! वे विद्यमान हो गये और अर्जुन को लेकर एकान्त स्थली में आ गये। अपने यन्त्रों में विद्यमान हो करके उन्होंने एक लोके का भीम स्थापित कर दिया। उस लोहे के भम को हस्तिनापुर में एक स्थली पर स्थिर कर दिया। स्थिर करके वे पुनः कुरूक्षेत्र पहुंचे। अगला दिवस आया तब युधिष्ठिर ने कहा, 'चलो भगवन्, मेरे प्यारे! पांचों पाण्डव और भगवान श्रीकृष्ण्ण हस्तिनापुर आ गये।

हस्तिनापुर आने के पश्चात अपने–अपने कक्षों में स्थिर हो करके वे अपने पितर से मिलन करने के लिए पहुंचे। महाराज धृतराष्ट्र ने कहा, हे भगवन्! हे कृष्ण !मैं उसे कण्ठ से ओत–प्रोत करना चाहता हूं जिसने मेरे वंश को समाप्त किया है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, अच्छा भगवन! तो भगवान कृष्ण ने जान लिया। वह लोहे का भीम स्थापित किया था, उन्होंने कहा कि महाराज! यह है तुम्हारे वंश को समाप्त करने वाला। मेरे प्यारे! उस अंध नेत्रहीन धृतराष्ट्र ने बेटा! लोहे के भीम को नष्ट कर दिया। तीन–तीन भाग हो गये। मेरे पुत्रो देखो ! उसके पश्चात भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा हे अर्जुन! आज भीम का विनाश हो जाता। यदि लोहे का भीम स्थापित न किया होता। भीम यदि उसके कण्ठ से लग जाता तो भीम का प्राणान्त हो जाता।

मेरे पुत्रों! देखो, जो ज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ता होते हैं उन्हें आगे की वार्ता स्वीकार होने लगती है। उन्हें आगे दृष्टिपात होने लगता है। तो मेरे पुत्रों! किसको? भगवान कृष्ण जैसे महापुरूषों को उन्हें आगे की वार्ता स्मरण आती रहती थी। ऐसे ही महारानी द्रौपदी को आती रहती थी और भी नाना ऋषि मुनि इस प्रकार के हुये हैं जिनकी चर्चाएं बेटा! मैं तुम्हें पुनः करूंगा। आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि यहाँ इस संसार में वैदिकता में ज्ञान और विज्ञान मानव का मौलिक गुण रहा है, मौलिकता रही है।

आत्म लोक

आओ मेरे प्यारे! आज के विचार–विनिमय द्वारा हम इतना उच्चारण करने आये थे कि केवल हम अपनी वार्ताओं को प्रकट कर सकें। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या? कि हम यहाँ विदुषियों की रक्षा होनी चाहिये। उनकी सुचरित्रता बनी रहनी चाहिये। मेरे प्यारे ! उनकी महत्ता उनके जीवन जिससे द्वितीय प्राणी उनकी शिक्षा का पान करने वाला हो।

मेरे प्यारे! जैसे भयंकर वनों में अतिथि सेवा होती रही और भगवान कृष्ण भी विज्ञान में संलग्न रहते थे, अग्रणीय वार्ताओं को आध्यात्मिक वाद का चिन्तन करते थे। तो इसलिए प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि जहाँ भौतिकवाद में मानव शारीरिक भोजन देता है वहाँ आध्यात्मिक भोजन भी प्राणी को देना चाहिये।

बेटा! दो प्रकार की क्षुधाएं होती हैं प्राणी के साथ। एक क्षुधा मानव को शारीरिक होती है और एक क्षुधा मानव को आध्यात्मिक होती है। भौतिक जो क्षुधा है, शारीरिक जो क्षुधा है उसको प्राणी भोज्य में लगा देता है। हे मानव! जहाँ यह शारीरिक भोज्य तू देता है, वहाँ आध्यात्मिक वाद में प्रवेश करके तू आत्मा को भी भोजन देने का प्रयास कर जिसके कारण तेरा मानव शरीर चेतनित बना हुआ है।

बेटा! आत्मा तुम्हारे शरीर में जब तक है, तब तक यह चैतन्य बना हुआ है, गति कर रहा है स्थूल और जब यह आत्मा इस शरीर से निकल जाता है तो क्रिया शून्य हो जाता है। वे क्रियाएं नहीं रहती, तो भोज्य वाला शरीर समाप्त हो गया। इसलिए आत्मा को भी भोजन दो। जिससे तुम्हारा आयु पवित्र बने, शारीरिक जीवन तुम्हारा स्वस्थ बना रहे और आत्मा को भोजन देने वाला प्राणी बेटा! अग्रणीय वार्ताओं को स्वीकार करता रहता है।

यह है, पुत्रों! आज की वार्ता, अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रकट करूँगा। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन–पाठन होगा।

ओ३म माम वसु देवम मया ग्रहणा रघुनाथ मन्दिर अमृतसर